मल्हार
MALHAR
1975-77

Professor K. D. Bajpai

Dr. S. K. Pandey

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग
सागर विश्वविद्यालय
DEPTT. OF ANCIENT INDIAN HISTORY, CULTURE & ARCHAEOLOGY
UNIVERSITY OF SAGAR
1977

Professor K. D. Bajpai

Dr. S. K. Pandey

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग
DEPTT. OF ANCIENT INDIAN HISTORY CULTURE & ARCHAEOLOGY
सागर विश्वविद्यालय
UNIVERSITY OF SAGAR
सागर
SAGAR
1977

FOREWORD

Madhya Pradesh has quite a large number of ancient sites which played significant role in the past as cultural centres. Malhār in the Bilaspur district is one of such sites. The Department of Ancient Indian History, Culture & Archaeology, University of Sagar has been conducting excavation work at this site since February, 1975. As a result of this, valuable material in the form of pottery, stone sculptures, terracottas, coins, beads, seals and sealings of considerable importance have been brought to light.

The present illustrated book on Malhār gives the history of this site and of the Chhattisgarh region in some detail. It also deals with the contribution of the site to the development of the Vedic, Buddhist and Jaina pantheons from c. 200 B. C. to the 13th century A. D.

Prof. K. D. Bajpai, who directed the field work, has with the help of his colleague, Dr. S. K. Pandey, brought out this brochure, which, I hope, will be useful to the scholars of archaeology and religious history.

I thank the Archaeology Department of Madhya Pradesh for providing funds not only for the excavation work but also for publishing this monograph.

(T. S. MURTY)
Kulapati

आमुख

मध्यप्रदेश के प्रमुख ऐतिहासिक स्थलों में मल्हार की गणना है। महाकौसल (छत्तीसगढ़) क्षेत्र का यह एक अत्यंत रोचक प्राचीन स्थल है। ताम्र-पाषाण काल से लेकर मध्य काल तक का क्रमबद्ध इतिहास यहां मिला है। मल्हार तथा उसके आसपास के क्षेत्र से उपलब्ध स्मारकों तथा अन्य पुरातन वस्तुओं के अवशेष इस बात के ज्वलंत प्रमाण हैं कि एक दीर्घ अवधि तक मल्हार में धार्मिक जीवन तथा भौतिक संस्कृति का विकास होता रहा।

सागर विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग द्वारा किये गये उत्खननों द्वारा मल्लालपत्तन (मल्हार का प्राचीन नाम) के आद्यैतिहासिक काल से लेकर कलचुरि काल तक के इतिवृत्त पर प्रभूत प्रकाश पड़ा है। सातवाहनों, शरभपुरियों, सोमवंशियों तथा कलचुरियों के शासन-काल में इस नगर ने बड़ी उन्नति की। वैदिक धर्म के शैव, वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायों के साथ यहां बौद्ध और जैन धर्म भी पल्लवित हुए और इस क्षेत्र में सांस्कृतिक समन्वय की भावना चरितार्थ हुई।

सागर विश्वविद्यालय के कुलपति डा० टी० एस० मूर्ति के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने मल्हार में किये जाने वाले हमारे उत्खनन कार्य में रुचि ली।

मध्यप्रदेश शासन ने मल्हार में हमारे कार्य के लिए आवश्यक सुविधाएं प्रदान कीं। शासन द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से विगत वर्षों में हमारा कार्य पूरा हो सका। मैं मध्यप्रदेश शासन, विशेषतः प्रदेश पुरातत्व विभाग के संचालक श्री पी० सी० सेन के प्रति इस सहयोग के लिए आभारी हूं। केन्द्रीय पुरातत्व विभाग के प्रति भी मैं अनुगृहीत हूं जिसने हमें मल्हार में उत्खनन तथा छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सर्वेक्षण की स्वीकृति प्रदान की। इस विभाग ने गत वर्ष हमें दस हजार रुपयों का अनुदान प्रदान कर हमारे कार्य को सम्पन्न करने में सहायता दी है।

इस सम्पूर्ण अवधि में मेरे सहयोगी डा० श्याम कुमार पाण्डेय ने मल्हार में उत्खनन-कार्य का पर्यवेक्षण किया है। इस पुस्तिका की

सामग्री के संकलन तथा लेखन में उनका पर्याप्त सहयोग रहा। विभाग के सहायक प्राध्यापक श्री विवेकदत्त झा तथा श्री कृष्णकुमार त्रिपाठी ने भी उत्खनन में सहायता दी। श्री नरेन्द्र शर्मा (ड्राफ्टसमैन), श्री मोहर खान (मार्कसमैन) तथा श्री प्रदीप कुमार शुक्ल (फोटोग्राफर) ने संबंधित क्षेत्रीय कार्यसंपादित किया। मैं इन सब को धन्यवाद देता हूं।

बिलासपुर जिले के जिलाधीश तथा अतिरिक्त जिलाधीश के प्रति भी मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूं, जिन्होंने हमें आवश्यक सुविधाएं प्रदान कीं। मल्हार ग्राम तथा उस अंचल के लोगों का हमें पूरा सहयोग प्राप्त रहा। मैं विशेष रूप से सर्वश्री अमरनाथ साव, रघुनंदन प्रसाद साव, खुलूराम तिवारी; छेदीलाल पाण्डेय, रामदत्त चौबे, केशवप्रसाद तिवारी, प्राचार्य रामशरण तम्बोली, रघुनंदन प्रसाद पाण्डेय तथा डा० शंकर चौबे का साभार नामोल्लेख करना चाहूंगा, जिन्होंने अनेक प्रकार से हमें सहयोग प्रदान किया।

भारतीय इतिहास में मल्हार क्षेत्र का असाधारण महत्व होने के कारण आशा है कि आगामी कई वर्षों तक यहां उत्खनन जारी रहेगा।

सागर विश्वविद्यालय

कृष्णदत्त वाजपेयी
संचालक
मल्हार उत्खनन

INTRODUCTION

Malhār is one of the few important sites of Madhya Pradesh. In the region of Mahākosala (Chhattīsgarh) it is by far the most interesting ancient site which has furnished a continuous history right from the Chalcolithic period to the late Medieval times. The monumental remains and other relics discovered in and around Malhar bear an eloquent testimony to the developed condition of the religious life and material culture in this town for a very long period.

The excavations conducted by the Department of Ancient Indian History, Culture & Archaeology, University of Sagar have been amply fruitful in bringing to light the story of *Mallālapattana* (ancient name of Malhār) from the proto-historic time to the Kalachuri period. During the reign of the Sātavāhanas, the Śarabhapurīyas, the Somavaṁśīs and the Kalachuris of Ratanpur, this town made great advancement. The Śaiva, Śākta and Vaiṣṇava sects of the Vedic religion, Buddhism and Jainism flourished here side by side and thus developed the idea of cultural integration in this region.

I am thankful to Dr. T. S. Murty, Kulapati, University of Sagar for taking interest in our field work at Malhar.

The State Government has given us necessary facilities to do the work at Malhar. The financial help given by the State Government has enabled us to do the work during these years. I am thankful to the State Government and especially to Sri P. C. Sen, Director of the State Archaeology, for this help. I am also thankful to the Archaeological Survey of India for permitting us to excavate Malhar and to conduct exploration work in the Chhattisgarh region. The Survey has been kind enough to sanction a grant of Rs. 10,000/- last year to complete our project.

My colleague, Dr. Shyam Kumar Pandey has been responsible for supervising the work at Malhar throughout. He has also helped me in preparing this brochure. Sri V. D. Jha Assistant Professers and

Sri K. K. Tripathi in the Department, have also helped in the field work. Sri N. P. Sharma (Draftsman), Sri Mohar Khan (Marksman) and Sri Pradeep Shukla (Photographer) also worked hard in the field. I am thankful to all of them.

I thank the Collector and Additional Collector, Bilaspur for providing us necessary facilities in our work. The villagers of Malhar and of the surrounding area gave us full cooperation. I should particularly mention the names of Sarvaśrī Amar Nath Sao, Raghunandan Prasad Sao, Pandit Khuluram Tiwari, Chhedilal Pandey, Ram Datt Chaube, Keshav Prasad Tiwari, Principal Ram Sharan Tamboli, Raghunandan Prasad Pandey, and Dr. Shankar Chaube, who have been very helpful in several ways.

Looking to the unusual importance of the site in indian History, the excavation work should continue here for several years to come.

SAGAR
Vasanta Panchmi,
12th. February, 1978

K. D. BAJPAI
Director,
Malhar Excavation

मल्हार

स्थिति

मल्हार नगर मध्य प्रदेश के बिलासपुर जिले में अक्षांश २१.९० उत्तर तथा देशांतर ८२.२० पू० में बिलासपुर से ३२ किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। बिलासपुर से रायगढ़ जाने वाली सड़क पर १८ किलोमीटर दूर मस्तूरी है। वहां से मल्हार तक १४ कि० मी० कच्चा रास्ता है।

नाम तथा विस्तार

मल्हार से प्राप्त कलचुरि-नरेश पृथ्वीदेव द्वितीय के कलचुरि संवत् ९१५ (११६३ ई०) के शिलालेख में मल्हार का प्राचीन नाम 'मल्लाल' दिया गया है। वहीं से प्राप्त कलचुरि संवत् ९१९ (११६७ ई०) के एक अन्य शिलालेख में इसे 'मल्लालपत्तन' कहा गया है, जिस से इसके व्यापारिक महत्व का पता चलता है। 'मल्लाल' संभवत: 'मल्लारि' से बना, जो भगवान् शिव की एक संज्ञा थी। पुराणों में मल्लासुर नामक असुर का नाम मिला है। उसके नाशक शिव को 'मल्लारि' कहा गया। प्राचीन दक्षिण कोसल क्षेत्र में शिव की पूजा के प्रचलन के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। मल्लारि से मल्लाल, मल्लार एवं मल्हार (आधुनिक नाम) हुए।

पूर्वी महाकोसल के रतनपुर–वंशी कलचुरियों के शासन-काल में लगभग १० वर्गमील के क्षेत्र में इस नगर का विस्तार था। प्राचीन मल्लाल पत्तन तीन नदियों से घिरा हुआ था। उसके पश्चिम में अरपा, पूर्व में लीलागर और दक्षिण में शिवनाथ नदी है। हमारी मान्यता है कि इस नगर का प्राचीन नाम 'शरभपुर' था। कलचुरियों के पहले इस क्षेत्र पर शासन करने वाले राजवंशों के अनेक अभिलेखों में शरभपुर नाम मिला है।[1] कौशाम्बी से दक्षिण-पूर्वी समुद्र-तट की ओर जाने वाला प्राचीन मार्ग भरहुत, बांधवगढ़, अमरकंटक, खरोद, मल्हार, तथा सिरपुर (जिला रायपुर) होकर जगन्नाथपुरी की ओर जाता था।

इतिहास

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में दक्षिण कोसल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि लगभग ई० पू० ६०० से इस क्षेत्र के कुछ भाग में सभ्यता का अत्यधिक विकास हुआ। तब से लेकर प्रारंभिक मध्य काल के अंत (लगभग १२०० ई०) तक धर्म, साहित्य तथा ललित कलाओं का यहां लगातार विकास होता रहा।

दक्षिण कोसल क्षेत्र प्राकृतिक संपदा का धनी रहा है। यहां मेकल पर्वत - शृंखला पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई हैं महानदी इस क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी है। सोन तथा नर्मदा नदियां इस क्षेत्र के उत्तर-पूर्व तथा उत्तर

---

१. 'शरभ' नामक असुर का नाम महाभारत में मिलता है। चेदिराज शिशुपाल के एक पुत्र का नाम भी शरभ था। रामायण में श्रीराम के एक वानर-यूथप का नाम शरभ दिया है। 'शरभ' शब्द विशेष मृग का भी द्योतक है।

पश्चिम भागों में प्रवाहित होती हैं। अन्य नदियों में शिवनाथ, मनियारी, अरपा, लीलागर, हसदो, सोन तथा मांद उल्लेखनीय हैं। बहुसंख्यक नदियों तथा अच्छी वर्षा के बावजूद यहां प्राचीन काल से ही जल संकट-रहा है। अतः वर्षा-जल के संग्रह हेतु आवासित क्षेत्रों के समीप बड़ी संख्या में जलाशयों का निर्माण इस भूभाग में बड़े रूप में किया गया।

पुरातात्त्विक तथा साहित्यिक साक्ष्य

उत्तर भारत के प्राचीन बड़े जनपदों में कोसल का नाम प्रसिद्ध था। मध्यप्रदेश के वर्तमान छत्तीसगढ़ क्षेत्र का नाम भी कालांतर में 'कोसल' रखा गया। उत्तर वाले जनपद से (जिसकी राजधानी अयोध्या थी और बाद में श्रावस्ती हुई) भिन्नता प्रकट करने के लिए दक्षिण वाले जनपद का नाम 'दक्षिण कोसल' प्रख्यात हुआ।

मल्हार के उत्खनन में ईसा की दूसरी शती की ब्राह्मी लिपि में आलेखित एक मृणमुद्रा प्राप्त हुई है, जिस पर 'गामस कोसलीया' (कोसली ग्राम की) लिखा है। कोसली या कोसला ग्राम का तादात्म्य मल्हार से १६ कि० मी० उत्तर पूर्व में स्थित कोसला ग्राम से किया जा सकता है। कोसला गांव में पुराना गढ़, प्राचीर तथा परिखा आज भी विद्यमान है, जो उसकी पुरातनता को मौर्यों से पूर्व ले जाती हैं। वहां कुषाण शासक विमकैडफाइसिस का एक सिक्का भी मिला है।

यह कहना कठिन है कि इस क्षेत्र को 'कोसल' या 'दक्षिण कोसल' की संज्ञा कब प्राप्त हुई। बाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि अयोध्या के राजा दशरथ की बड़ी रानी तथा राम की माता कौसल्या कोसल देश की थीं। यह कोसल दशरथ द्वारा शासित कोसल से भिन्न होगा और बहुत संभव है कि वह दक्षिण कोसल होगा। कोसला ग्राम की प्राचीनता को देखते हुए अनुमान किया जा सकता है कि श्रीराम की माता कौसल्या यहीं की थीं। रामायण तथा परवर्ती साहित्य से ज्ञात होता है कि राम ने अपने प्रवास में दंडकारण्य जाने के लिए चित्रकूट से आगे जिस मार्ग का अवलंबन किया था, वह शहडोल, बिलासपुर, तथा रायपुर जिलों से होकर जाता था। दण्डकारण्य का यह मार्ग ईसवी चौथी शती तक काफी प्रचलित हो गया था। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग - प्रशस्ति में कोसल का नामोल्लेख है। अतः यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि इस क्षेत्र को कोसल की संज्ञा गुप्तकाल के पूर्व प्राप्त हो चुकी थी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अनेक पुराणों तथा महाकाव्यों में गिनाये गये जनपदों की सूची में (दक्षिण) कोसल का उल्लेख मेकल (सतना, रीवा, शहडोल, सीधी, तथा सरगुजा जिलों का अधिकांश) के साथ हुआ है।

छत्तीसगढ़

मेकल के दक्षिण का क्षेत्र कोसल कहलाता था। कालान्तर में मेकल क्षेत्र कोसल में अंतर्भुक्त हो गया और इस प्रकार महाकोसल का निर्माण हुआ। हाल में छत्तीसगढ़ क्षेत्र में किये गए सर्वेक्षणों से मिट्टी के परकोटों से घिरे हुए अनेक गढ़ों की खोज हुई है। ये प्राचीन काल में आटविक दुर्ग कहलाते थे। हमारे मत में उत्तर-मध्य काल में दक्षिण कोसल को दिया गया छत्तीसगढ़ नाम इन्हीं दुर्गों के समवाय का द्योतक है। ये सभी दुर्ग बिलासपुर जिला में स्थित हैं तथा इनके नाम इस भांति हैं :

१. मल्हार, २ कोणार, ३. कोटमी सुनार, ४. धरदेही, ५. सलखन, ६. पामगढ़, ७. खरोद,

८. अकलतरा, ९. लोहर्सी, १०. कोटगढ़, ११. खटोला, १२. बच्छोद, १३ घुरकोट, १४. अंवरिद, १५ सरहर, १६. नवागढ़, १७. सेंउढ़, १८- भैंसदा, १९. केरा, २० अड़भार, २१. कोटमी, २२. बयौत, २३. छपोरा, २४. सिथारा, २५. डभरा, २६. तेलीकोट, २७. पोता, २८. काशीगढ़, २९. धुरकोट (कोटमी), ३०. बरगढ़, ३१. सपोस, ३२. पेंडरवा, ३३. मड़वा, ३४. कोसला, ३५. मारो, ३६. कोटतरा।

व्यापारिक मार्ग

प्राचीनकाल में उत्तर भारत को दक्षिणी-पूर्वी समुद्र तट से जोड़ने वाला स्थल मार्ग कौशाँबी से सतना जिले के भरहुत स्थान से होकर शहडोल, बिलासपुर तथा रायपुर जिलों से होता हुआ आगे जाता था। इस मार्ग पर स्थित महत्वपूर्ण नगरों में बांधवगढ़, खरोद, शिवरीनारायण, शरभपुर (वर्तमान मल्हार), श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर) आदि उल्लेखनीय हैं। इस मार्ग के माध्यम से कलिंग के साथ दक्षिण कोसल के संबंध दृढ़ हुए। ईसवी पांचवीं शती के पश्चात् सोमवंशी शासकों का राज्य-विस्तार कलिंग के समुद्र-तट तक हो गया। इससे दोनों क्षेत्रों के बीच व्यापारिक तथा साँस्कृतिक संबंध प्रगाढ़ हो गए।

दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) का इतिहास अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। कलचुरि शासकों के पहले इस क्षेत्र पर शासन करने वाले राजवंशों का ज्ञात इतिहास अपर्याप्त है। मौर्य साम्राज्य के विघटन के पश्चात् इस क्षेत्र में राज्य करने वाले वंशों में सातवाहन, शरभपुरीय, सोमवंश तथा बाणवंश उल्लेखनीय हैं। पर्याप्त साक्ष्यों के अभाव में संपूर्ण छत्तीसगढ़ का ऐतिहासिक सर्वेक्षण तथा प्रमुख स्थलों का उत्खनन आवश्यक हो गया। मल्हार को इस दृष्टि से बहुत उपयुक्त माना गया और वहाँ सागर विश्वविद्यालय द्वारा उत्खनन प्रारंभ किया गया।

प्राक् तथा आद्य इतिहास

अब तक ज्ञात पुरातात्विक तथा साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राक् तथा आद्यऐतिहासिक युग में मल्हार तथा उसके आस-पास के क्षेत्र में शबर-निषाद संस्कृति के लोग रहते थे। वे लोग आरंभ में पर्वत-कंदराओं में निवास करते थे। उनके द्वारा प्रयुक्त पाषाण उपकरण इस क्षेत्र से मिले हैं। धीरे-धीरे वे झोपड़े बनाकर रहने लगे और क्रमशः इस क्षेत्र में गाँवों का विकास हुआ।

उत्खनन तथा सर्वेक्षणों के आधार पर ज्ञात हुआ है कि पाषाण-युगों के पश्चात् भारत के अन्य क्षेत्रों के समान इस क्षेत्र में भी ताम्र-पाषाण सभ्यता का उदय हुआ। इस सभ्यता के लोग चित्रित लाल तथा चित्रित काले और लाल मृद्भाण्डों का प्रयोग किया करते थे। इस सभ्यता का संबंध वैदिक आर्यों से जोड़ा जाता है।

इस सभ्यता के बाद 'महाश्म शवागार' सभ्यता आयी। मल्हार से महाश्म शवागार प्राप्त नहीं हुए हैं। पर दुर्ग तथा रायपुर जिलों से इनकी प्राप्ति इस सभ्यता के विस्तार की ओर संकेत करती है। मल्हार-उत्खनन में दक्षिण भारतीय महाश्म शवागार - सभ्यता से मिलते-जुलते ठीकरों की प्राप्ति हुई है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि ताम्र-पाषाण काल तथा महाश्म-शवागार सभ्यता के काल में मानव के

भौतिक जीवन में उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ। प्रथम काल में केवल तांबे का प्रयोग होता था। बाद के युग में लोहा प्रयोग में आने लगा।

प्रारंभिक ऐतिहासिक काल

दक्षिण कोसल का भू-भाग मौर्य सम्राटों के अधीन रहा। मौर्य साम्राज्य के विशृंखलन के पश्चात् इस क्षेत्र की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आया। इस परिवर्तन के पुरातात्विक प्रमाण-उपलब्ध हुए हैं। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में मिट्टी के परकोटों वाले अनेक गढ़ ढूंढ़ निकाले गये हैं। उनका उल्लेख अशोक के अभिलेखों में आटविक राज्यों के रूप में हुआ है। आटविकों की अपनी शासन व्यवस्था रही होगी, जिसकी परम्परा बस्तर क्षेत्र के आदिवासियों में देखी जा सकती है। संभवतः मौर्यों के पूर्व ही इस व्यवस्था की स्थापना दक्षिण कोसल क्षेत्र में हो गयी। मौर्य शासन-काल में अनेक गणराज्यों का अंत कर उन्हें साम्राज्य में शामिल कर लिया गया था। मौर्यों के पश्चात् गणतंत्र भारत के अनेक क्षेत्रों में पुनः सक्रिय हुआ। मौर्योत्तर जनपदीय सिक्के इसे प्रमाणित करते हैं। 'गामस कोसलीया' वाली मुद्रा भी संभवतः इसकी ओर संकेत करती है।

मौर्यों के समय में प्रचलित बड़े आकार की ईंटें तथा उत्तर भारतीय काले पालिश युक्त बर्तन इस क्षेत्र पर मौर्य साम्राज्य को प्रमाणित करते हैं।

ईसा पूर्व दूसरी शती में कलिंग क्षेत्र पर खारवेल का शासन था। खारवेल महान् विजेता था तथा उसकी हाथीगुंफा प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने न केवल उत्तरी भारत पर अपितु पश्चिम दिशा में सातवाहन साम्राज्य पर भी आक्रमण किया। दक्षिण कोसल की सीमायें कलिंग से लगती थीं। अतः अपने पश्चिमी अभियान में उसने दक्षिण कोसल पर कुछ समय के लिए आधिपत्य स्थापित किया होगा। इस भांति यह क्षेत्र कलिंग के शासन में आया होगा। खारवेल के साथ ही इस क्षेत्र से उसके वंश का आधिपत्य समाप्त हो गया।

सातवाहन वंश

मौर्यों के पतन के पश्चात् सातवाहन शासकों का अभ्युदय हुआ। दक्षिण कोसल क्षेत्र पर सातवाहनों का आधिपत्य एक लंबे समय तक रहा। सातवाहन शासकों की गजांकित मुद्रायें मल्हार-उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। रायगढ़ जिला के बालपुर ग्राम से सातवाहनों के एक शासक 'आपीलक' का सिक्का प्राप्त हुआ था। 'वेदिश्री' के नाम की मृण्मुद्रा मल्हार में प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त सातवाहन-कालीन कई अभिलेख गुंजी, किरारी, कोणार, मल्हार, सेमरसल, दुर्ग, आदि स्थलों से प्राप्त हुए हैं।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र से कुषाण-शासकों के सिक्के भी मिले हैं। उनमें विमकैड्फाइसिस तथा कनिष्क प्रथम के सिक्के उल्लेखनीय हैं। यौधेयों के भी कुछ सिक्के इस क्षेत्र में उपलब्ध हुए हैं।

मल्हार उत्खनन से ज्ञात हुआ है कि इस क्षेत्र में सुनियोजित नगर-निर्माण का प्रारंभ सातवाहन-काल में हुआ। इस काल के ईंटों से बने भवन एवं ठप्पांकित मृद्भाण्ड यहाँ मिले हैं। मल्हार के गढ़ी क्षेत्र में राजमहल एवं अन्य संभ्रांत जनों के आवास एवं कार्यालय रहे होंगे। संभवतः वहां भवनों का प्रारंभिक निर्माण सातवाहनों के शासन के साथ हुआ।

सातवाहनोत्तर काल

सातवाहन- शासन की समाप्ति के पश्चात् दक्षिण कोसल के बारे में हमारी जानकारी पर्याप्त नहीं है। मल्हार में किये गये उत्खननों से यह जानकारी मिली है कि ईसवी दूसरी शती के पश्चात् वहां सभ्यता का विकास जारी रहा। मल्हार की तरह अन्य अनेक स्थलों में भी आटविक दुर्गों का निर्माण हुआ।

विष्णु पुराण में प्रसिद्ध सातवाहन वंश के शासन के पश्चात् दक्षिण कोसल में राज्य करने वाले नौ शासकों का उल्लेख मिलता है, परन्तु पुराण में उनके नाम नहीं दिये हैं और न उनके वंश का कोई परिचय दिया गया है।

शरभपुरीय राजवंश

दक्षिण कोसल में कलचुरि-शासन के पहले दो प्रमुख राजवंशों का शासन रहा। वे हैं: शरभपुरीय तथा सोमवंशी। इन दोनों वंशों का राज्यकाल लगभग ३२५ से ६५५ ई० के बीच रखा जा सकता है। यह काल छत्तीसगढ़ के इतिहास का 'स्वर्ण युग' कहा जा सकता है। धार्मिक तथा ललित कलाओं के क्षेत्र में यहां विशेष उन्नति हुई। इस क्षेत्र में ललित कला के पाँच मुख्य केन्द्र विकसित हुए: १. मल्हार, २. ताला, ३. खरोद, ४. सिरपुर तथा ५. राजिम।

शरभपुरीय वंश का शासन प्रयाग और मगध क्षेत्रीय गुप्तों के लगभग साथ ही प्रारंभ हुआ। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने ई० ३६० के लगभग दक्षिण कोसल पर आक्रमण किया उस समय वहां महेन्द्र का शासन था। महेन्द्र की राजधानी शरभपुर (मल्हार) में थी। इसका आभास उस मृण्मुद्रा द्वारा मिलता है जिस पर प्रारंभिक गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में 'महाराज महेन्द्रस्य' लिखा हुआ है। महाराजा महेन्द्र, अभिलेखों से ज्ञात शरभपुरीय शासक महाराज नरेन्द्र का छोटा भाई अथवा पुत्र होगा। नरेन्द्र तथा प्रसन्नमातृ के पारस्परिक संबंधों का पता शरभपुरीयों के लेखों से नहीं चलता।

छत्तीसगढ़ से सिक्कों की कुछ निधियां मिली हैं। कई निधियों में प्रसन्नमातृ तथा महेन्द्रादित्य के सिक्के साथ-साथ प्राप्त हुए हैं। इससे अनुमान होता है कि महेन्द्रादित्य प्रसन्नमातृ का पूर्ववर्ती शासक रहा होगा। अनेक विद्वान् महेन्द्रादित्य तथा महेन्द्र को अभिन्न मानते हैं। यदि इसे युक्तिसंगत माना जाये तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाराजा महेन्द्र के पश्चात् प्रसन्नमातृ का शासन स्थापित हुआ। दुर्भाग्य से महेन्द्र को गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के दुर्दान्त अभियान का सामना करना पड़ा। समुद्रगुप्त के हाथों पराजय के परिणामस्वरूप इस वंश को गुप्तों की अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा। यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। प्रसन्नमातृ ने अपने को गुप्तों से स्वतंत्र कर लिया। पराजित शासक महेन्द्र को शरभपुरीय वंशावली में स्थान नहीं दिया गया। यह संभवत: उसी भाँति हुआ जैसे कि समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त का नाम गुप्त- वंशावली में स्थान नहीं पा सका।

शरभपुरीय वंश का प्रथम शासक शरभ या शरभराज था। उसी के नाम पर राजधानी का नाम शरभपुर प्रसिद्ध हुआ होगा। एरण (जिला सागर) में प्राप्त एक शिलालेख में गोपराज का नाम आया है। इस गोपराज को शरभ राज का दौहित्र माना गया है। एरण अभिलेख की तिथि ५१० ई० है। इस आधार पर शरभराज की तिथि ४८० के आसपास मानी जाती रही है।

गोपराज के अभिलेख में उल्लिखित शरभराज की समता इस वंश के प्रथम शासक शरभ से करना असंगत है। सोमवंशी नरेश महाशिवगुप्त बालार्जुन का राज्य-काल ५९५ से ६५५ ई० तक था। यदि शरभराज की तिथि ४८० ई० मानी जाये तो महाशिवगुप्त के राज्यारोहण (५९५ ई०) तथा उक्त तिथि के बीच ११५ वर्षों का ही समय बचता है। इस अवधि में दो राजवंशों के १८ शासक राज्य करलें (जबकि केवल महाराज नरेन्द्र का शासन-२५ वर्षों का था), ऐसा संभव नहीं दिखता अतः या तो गोपराज-अभिलेख का शरभराज किसी अन्य क्षेत्र का शासक रहा होगा, अथवा शरभपुर की गद्दी पर बैठने वाले प्रत्येक शासक को 'शरभराज' मानना पड़ेगा।

तिथिक्रम के अनुसार सुदेवराज को ई० पांचवी शती के उत्तरार्द्ध में रखा जा सकता है। सुदेवराज शरभपुर की गद्दी पर बैठने वाला अंतिम शासक था। उसके पश्चात् इस क्षेत्र का शासन मेकल के सोमवंशियों के अधिकार में चला गया।

मेकल के सोमवंशी

मेकल की सोमवंशी शाखा ने शहडोल जिला में अपना शासन प्रारंभ किया। इस वंश का संस्थापक जयबल था, जिसका पुत्र उदयन हुआ। उदयन का पुत्र इन्द्रबल तथा उसका सुत भरतबल हुआ। भरतबल का विवाह कोसल की कन्या (लोक प्रकाशा) से हुआ। 'लोक प्रकाशा' को अमरार्य कुल की कहा गया है। शरभपुरीय शासक भी अमरार्य कुल के थे। अतः लोक प्रकाशा को शरभपुर वंश का मानना युक्तिसंगत होगा और वह सुदेवराज की पुत्री रही होगी।

सुदेवराज के पुत्र का नाम नहीं मिलता। प्रतीत होता है कि उसने अपने राज्य को दो भागों में बांट दिया। दक्षिण कोसल का मेकल से लगा भाग उसने अपने जामाता भरतबल को दिया तथा शिवनाथ नदी के दक्षिण का भाग अपने छोटे भाई प्रवरराज द्वितीय को सौंपा। इस प्रकार प्रवरराज की राजधानी श्रीपुर (सिरपुर) में स्थापित हो गई। मल्हार से हाल में दो ताम्रपत्र लेख मिले हैं, जिनमें से एक पूरा है। इस पूर्ण लेख से ज्ञात हुआ है कि भरतबल के पश्चात् इस क्षेत्र पर उसके पुत्र शूरबल 'उदीर्णवैर्य' का शासन हुआ।

शूरबल के पश्चात् मेकल के सोमवंशियों की स्थिति स्पष्ट नहीं है। खरोद से प्राप्त इन्द्रबल के पुत्र ईशानदेव के अभिलेख से ज्ञात हुआ है कि सोमवंशियों की द्वितीय शाखा ने दक्षिण कोसल पर शासन आरंभ किया। मेकल तथा कोसल के इन राजवंशों के बीच क्या संबंध स्थापित हुए, इसका पता नहीं चलता। अनुमानतः भरतबल का ही दूसरा नाम इन्द्रबल था। संभवतः परम्परा के अनुसार पितामह के नाम पर पौत्र का नामकरण हुआ। इस प्रकार उदयन भरतबल का दूसरा पुत्र रहा होगा। शूरबल मेकल क्षेत्र में शासन कर रहा था। उसने कोसल में अपने छोटे भाई को प्रशासक बनाकर रखा होगा। शूरबल तथा उदयन की मृत्यु के पश्चात् उदयन के पुत्र इन्द्रबल ने अपने को पूर्ण स्वतंत्र घोषित कर दिया और प्रसिद्ध सोमवंशी शाखा की नींव डाली।

कोसल का सोमवंश

इस वंश में उदयन से लेकर महाशिवगुप्त बालार्जुन तक शासकों ने शासन किया। बालार्जुन के पश्चात् उसका पुत्र शिवनंदी गद्दी पर बैठा। सोमवंशी शासकों ने सिरपुर को अपनी

राजधानी बनाया। इस वंश में नन्हराज प्रथम, तीवरदेव तथा महाशिवगुप्त बालार्जुन अत्यन्त प्रभावशाली शासक हुए। उनके शासन में सोमवंशी शासकों का साम्राज्य पूर्व में कटक से लेकर पश्चिम में बाँदा जिले तक तथा उत्तर में मेकल पर्वत से लेकर दक्षिण में बस्तर तक फैल गया।

बस्तर के नलवंशी शासकों की शक्ति बढ़ने पर धीरे-धीरे सोमवंशी शासक उड़ीसा की ओर अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने लगे। कुछ समय बाद सोमवंशियों की दूसरी शाखा ने पुनः कोसल क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। तत्पश्चात् कलचुरियों ने उन्हें इस क्षेत्र में पराजित कर अपना शासन स्थापित कर लिया।

मध्यकाल

सिरपुर का सोमवंशी-युग महाशिव गुप्त बालार्जुन के पुत्र शिवनंदी के साथ समाप्त माना जाता है। इस वंश की बाद की स्थिति स्पष्ट नहीं है। राजिम से प्राप्त नल-शासक विलासतुंग के अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि सिरपुर के आसपास के क्षेत्र से नलों ने सोमवंशियों को आठवीं शती के आरंभ में हटा दिया था; पर प्रतीत होता है कि बिलासपुर तथा सारंगढ़ क्षेत्र में सोमवंशी शासकों का राज्य जारी रहा।

परवर्ती काल में सोमवंशियों की एक नई शाखा का उदय हुआ। यह शाखा पाण्डुकुल से संबंधित नहीं थी। इस वंश के शासकों की उपाधि 'त्रिकलिंगाधिपति' थी, अर्थात् इस वंश के शासक अपने को कोसल, कलिंग तथा उत्कल इन तीनों क्षेत्रों का अधिपति मानते थे। इन शासकों की दो राजधानियों—ययातिनगर तथा विनीतपुर-के उल्लेख मिलते हैं। ये दोनों स्थल वर्तमान उड़ीसा राज्य में स्थित हैं। इस आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि किसी कारण से सोमवंशी शासकों को कोसल का क्षेत्र त्यागने को बाध्य होना पड़ा।

पाली (बिलासपुर जिला) के शिव मंदिर में एक अभिलेख खुदा है, जिसपर बाणवंशी शासक मल्लदेव के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम का नामोल्लेख है। बाण-शासक प्रारम्भ में पल्लवों के सामन्त थे। अनुमान है कि बाद में उन्होंने कोसल के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। यह भी संभव है कि उक्त शासक मल्लदेव के नाम पर प्राचीन 'शरभपुर' का नाम परिवर्तित होकर 'मल्लाल' हो गया हो। बाण-शासकों को डाहल के कलचुरि-शासक मुग्धतुंग ने पराजित कर दिया तथा पाली पर अधिकार कर तुम्माण को अपनी राजधानी बनाया।

कलचुरि-वंश

नवीं शती के उत्तरार्द्ध में त्रिपुरी के कलचुरि-शासक कोकल्लदेव प्रथम के पुत्र शंकरगण (मुग्धतुंग) ने डाहल मंडल से कोसल पर आक्रमण किया। पाली पर विजय प्राप्त करने के बाद उसने अपने छोटे भाई को तुम्माण का शासक बना दिया। कलचुरियों की यह विजय स्थायी नहीं रह पायी। परवर्ती सोमवंशी शासक अब तक काफी प्रबल हो गये थे; उन्होंने तुम्माण से कलचुरियों को निष्कासित कर दिया।

लगभग ई० १००० में कोकल्लदेव द्वितीय के १८ पुत्रों में से किसी एक के पुत्र कलिंगराज ने दक्षिण कोसल पर पुनः आक्रमण किया तथा तत्कालीन परवर्ती सोमवंशी नरेशों को पराजित कर कोसल क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। कलिंगराज ने पुनः तुम्माण को कलचुरियों की राजधानी बनाया। कलिंगराज के पश्चात्

कमलराज, रत्नराज प्रथम तथा पृथ्वीदेव प्रथम क्रमशः कोसल के शासक हुए। अभी तक यह प्रमाणित नहीं हो सका कि मल्हार पर इन कलचुरि-शासकों का आधिपत्य कब स्थापित हो गया।

मल्हार पर सर्वप्रथम कलचुरि-वंश का शासन जाजल्लदेव प्रथम के समय में स्थापित हुआ। उसके अभिलेख से ज्ञात होता है कि मल्हार के आसपास का क्षेत्र तथा रायपुर जिला का उत्तरी भाग, जिसे 'तलहारि मंडल' कहा जाता था, सर्वप्रथम जाजल्लदेव प्रथम के शासनकाल में कलचुरियों के अधीन हुआ। पृथ्वीदेव द्वितीय के राजत्वकाल में मल्हार पर कलचुरियों का मांडलिक शासक ब्रह्मदेव था। उसने अपने शासक पृथ्वीदेव द्वितीय द्वारा कलिंग पर की गयी चढ़ाई में शूरता का परिचय दिया। इससे प्रसन्न होकर उस शासक ने ब्रह्मदेव को मंत्री-पद पर नियुक्त कर दिया।

पृथ्वीदेव के पश्चात् उसके पुत्र जाजल्लदेव द्वितीय के समय में सोमराज नामक ब्राह्मण ने मल्हार में प्रसिद्ध केदारेश्वर मंदिर का निर्माण कराया। यह मंदिर अब पातालेश्वर मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है।

सोलहवीं शती में मल्हार पर पठानों के आक्रमण का उल्लेख वहाँ पर प्रचलित लोक-कथाओं तथा लोकगीतों में मिलता है। ये पठान कौन थे, इसकी निश्चित सूचना उपलब्ध नहीं है।

मराठा शासन

कलचुरि वंश का अंतिम शासक रघुनाथसिंह था। ई० १७४२ में नागपुर का रघुजी भोंसले अपने सेनापति भास्कर पंत के नेतृत्व में उड़ीसा तथा बंगाल पर विजय हेतु छत्तीसगढ़ से गुजरा। उसने रतनपुर पर आक्रमण किया तथा उस पर विजय प्राप्त कर ली। इस प्रकार छत्तीसगढ़ से हैहय वंशी कलचुरियों का शासन लगभग सात शताब्दियों पश्चात् समाप्त हो गया।

कला

उत्तर भारत से दक्षिण-पूर्व की ओर जाने वाले प्रमुख मार्ग पर स्थित होने के कारण मल्हार का महत्व बढ़ा। यह नगर धीरे-धीरे विकसित हुआ तथा वहाँ शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन धर्मावलंबियों के मंदिरों, मठों तथा मूर्तियों का निर्माण बड़े रूप में हुआ। मल्हार में चतुर्भुज विष्णु की एक अद्वितीय प्रतिमा मिली है। उस पर मौर्यकालीन ब्राह्मीलिपि में लेख अंकित है। लेख से ज्ञात हुआ है कि इस प्रतिमा की प्रतिष्ठापना पर्णदत्त की भार्या भारद्वाजा के द्वारा करायी गयी। भारत में अब तक प्राप्त अभिलिखित पूज्य प्रतिमाओं में यह मूर्ति सबसे अधिक प्राचीन है। इसका निर्माण-समय लगभग ई० पूर्व २०० है। पहले चारों ओर से उकेर कर प्रतिमाओं को बनाने का रिवाज था। यक्षों की ऐसी कई प्रतिमाएं मल्हार में मिली हैं।

गुप्तकाल में व्यावसायिक तथा व्यापारिक दृष्टि से मल्हार की समृद्धि बढ़ी। इसके फलस्वरूप वहां व्यापारिक केन्द्र की स्थापना हुई तथा विभिन्न धर्मावलंबियों ने अपने धर्मों के उत्थान हेतु मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण कराया। मल्हार तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र से विशेषतः शैव मंदिरों के अवशेष मिले हैं, जिनसे इस क्षेत्र में शैव धर्म के विशेष उत्थान का पता चला है। ईसवी पांचवीं से सातवीं शती तक निर्मित शिव, कार्तिकेय, गणेश, स्कन्दमाता, अर्धनारीश्वर आदि की उल्लेखनीय

मूर्तियां यहां प्राप्त हुई हैं। गुप्तकालीन मंदिरों की सजावट अत्यन्त रोचक थी। कुछ मंदिरों पर मनोरंजक लोक कथाओं का अंकन है। एक शिलापट्ट पर 'कच्छप जातक' की कथा अंकित है। शिला पट्ट पर सूखे तालाब से एक कछुए को उड़ाकर जलाशय की ओर ले जाते हुए दो हंस बने हैं। दूसरी कथा उलक-जातक की है। उसमें उल्लू को पक्षियों का राजा बनाने के लिए उसे सिंहासन पर बैठाया गया है।

सातवीं से दसवीं शती के मध्य विकसित मल्हार की मूर्तिकला में गुप्तयुगीन विशेषताएं स्पष्ट परिलक्षित हैं। मल्हार में बौद्ध स्मारकों तथा प्रतिमाओं का निर्माण इस काल की विशेषता है। बुद्ध, बोधिसत्व, तारा, मंजुश्री, हेवज्र आदि अनेक बौद्ध देवों की प्रतिमाएं मल्हार में मिली हैं। उत्खनन में बौद्ध देवता हेवज्र का मंदिर मिला है। इससे ज्ञात हुआ है कि ईसवी छठी शती के पश्चात् यहाँ तांत्रिक बौद्ध धर्म का विकास हुआ।

जैन तीर्थंकरों, यक्षों-यक्षियों, विशेषत: अंबिका, की प्रतिमाएं भी यहां मिली हैं।

दसवीं से तेरहवीं शती तक के समय में मल्हार में विशेष रूप से शिव - मंदिरों का निर्माण हुआ। इनमें कलचुरि संवत् ९१९ (=११६७ ईसवी) में निर्मित केदारेश्वर मंदिर सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस मंदिर का निर्माण सोमराज नामक एक ब्राह्मण द्वारा कराया गया। 'धूर्जटि महादेव' का अन्य मंदिर कलचुरि–नरेश पृथ्वीदेव द्वितीय के शासन - काल में उसके सामंत ब्रह्मदेव द्वारा कलचुरि संवत ९१५ (११६३ ईसवी) में बनवाया गया। इस काल में शिव, गणेश, कार्तिकेय, विष्णु, लक्ष्मी, सूर्य तथा दुर्गा, की प्रतिमाएं विशेष रूप से निर्मित की गयीं। कलचुरि-शासकों, उनकी रानियों, आचार्यों तथा गणमान्य दाताओं की प्रतिमाओं का निर्माण भी उल्लेखनीय है। मल्हार में ये प्रतिमाएं प्राय: काले ग्रेनाइट पत्थर या लाल बलुए पत्थर की बनायी गयीं। स्थानीय सफेद पत्थर और हलके - पीले रंग के चूना-पत्थर का प्रयोग भी मूर्ति-निर्माण हेतु किया गया।

मल्हार के उत्खनन में प्राचीन इमारतों के अवशेष बड़ी संख्या में मिले हैं। उनसे यह जानकारी मिली है कि मौर्यकाल से लेकर १३वीं शती तक यहां इमारतों का निर्माण बड़े रूप में हुआ। यहां की भौतिक सभ्यता का विशेष विकास गुप्त-युग से लेकर कलचुरियों के शासन-काल तक हुआ। धातुओं तथा पत्थर के बने विविध कलापूर्ण आभूषण एवं दैनिक जीवन की अन्य वस्तुएं यहां प्रचुरता से मिली हैं, जिन से इस बात पर प्रकाश पड़ा है कि भारत के इस भूभाग में सभ्यता के विभिन्न अंगों का विकास हुआ। अनेक धर्मावलंबी किस प्रकार एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता एवं आदर की भावना रखते थे, इसका मल्हार ज्वलंत उदाहरण है।

उत्खनन (१९७४–७७)

मल्हार में उत्खनन का उद्देश्य इस स्थल तथा क्षेत्र के इतिहास की लुप्त कड़ियों की जानकारी प्राप्त करना रहा है। प्राचीनकाल में दक्षिण कोसल के नाम से ज्ञात यह क्षेत्र अब छत्तीसगढ़ के नाम से जाना जाता है। यहां से अनेक राजवंशों तथा शासकों की सूचनाएं सिक्कों तथा अभिलेखों द्वारा प्राप्त हुई हैं। व्यवस्थित ऐतिहासिक क्रम में इनकी स्थापनाएं अभी तक संभव नहीं हो पायी हैं। बहुचर्चित ऐतिहासिक राजधानियों, जैसे शरभपुर, प्रसन्नपुर या ययाति नगर, का अन्वेषण भी अभी शेष है। आशा है मल्हार तथा अन्य प्रमुख स्थलों के उत्खनन से इस क्षेत्र के इतिहास की अनेक समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलेगी।

पिछले तीन वर्षों में हुए उत्खननों से मल्हार की संस्कृति का क्रम इस प्रकार उभरा है :

१. प्रथम काल–ईसा पूर्व लगभग १००० से मौर्य काल के पूर्व तक।
२. द्वितीय काल– मौर्य-सातवाहन- कुषाण काल (ई० पू० ३२५ से ई० ३०० तक)।
३. तृतीय काल– शरभपुरीय तथा सोमवंशी काल (ई० ३०० से ई० ६५० तक)।
४. चपुर्थ काल–परवर्ती सोमवंशी काल (ई० ६५० से ई० ९०० तक)।
५. पंचम काल–कलचुरि काल (ई० ९०० से ई० १३०० तक)।

उपर्युक्त वर्गीकरण इस क्षेत्र में शासन करने वाले प्रमुख राजवंशों तथा उनकी संभावित तिथियों को ध्यान में रखकर किया गया है।

प्रथम काल (मौर्यकाल के पूर्व की सभ्यता)

मल्हार के उत्खनन में आरंभिक स्तरों से जिस सभ्यता का ज्ञान हुआ है उसे 'महाश्म शवागार-सभ्यता' कहा जाता है। बुद्ध के पूर्व प्रायः संपूर्ण उत्तर तथा मध्य भारत की सभ्यता को ताम्राश्म सभ्यता कहा जाता है। लगभग इसके समसामयिक दक्षिण भारत में पनपने वाली सभ्यताओं को नव पाषाण-सभ्यता तथा महाश्म-सभ्यता के नाम से संबोधित किया जाता है। बड़े पत्थरों को शवस्थलों पर अनेक ढंग से लगाकर स्मारक रूप में 'महाश्म शवागारों', का निर्माण किया जाता था। रायपुर में धमतरी के आसपास ऐसे शवागारों का विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हुआ है।

मल्हार में इस सभ्यता के शवागारों की प्राप्ति नहीं हुई, पर उससे संबंधित ठीकरे यहां उपलब्ध हुए हैं। उक्त सभ्यता की कड़ी में मल्हार का जुड़ना असंगत नहीं है। मल्हार से लगभग ४० कि० मी० दूर शिवरी-नारायण के पास खरोद नामक स्थान से काले-लाल रंग का एक ठीकरा प्राप्त हुआ, जिसकी काली सतह पर सफेद रंग का चित्रण है। इस प्रकार के ठीकरे राजस्थान की अहाड़ सभ्यता के परिचायक हैं तथा उन्हें ताम्र-पाषाण युग का माना जाता है।

मल्हार के प्रथम काल के स्तरों से काले तथा लाल रंग के ठीकरे बहुतायत से मिले हैं। ठीकरों को पका कर उनकी काली सतह पर किसी नुकीली वस्तु से खरोंच कर विभिन्न प्रकार के अभिप्राय भी बनाये जाते थे। इसी भांति के चिन्ह दक्षिण भारतीय महाश्म-शवागार सभ्यता के ठीकरों में भी प्राप्त हैं।

मल्हार के अन्य मृदभाण्डों में लाल रंग वाले पात्र प्रमुख हैं। उनमें से कुछ भाण्डों पर लाल सतह पर लालरंग या काले रंग का चित्रण प्राप्त हुआ है। यहां के मृद्-भाण्डों में एक और विशेषता देखने में आयी है। काले और लाल बर्तनों में काली सतह के स्थान पर लाल सतह पर काले रंग की आड़ी रेखायें खिची हुई मिली हैं। उक्त विशेषतायें मौलिक हैं। पर इन ठीकरों की उपलब्धि पर्याप्त मात्रा में न होने के कारण अभी किसी निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है। अचित्रित धूसर मृद्भाण्ड तथा चमकीले काले रंग के बर्तन भी इस काल से प्राप्त हुए हैं।

प्रथम काल के निचले स्तरों (खदान ४) में फर्श की तीन तहें पायी गयी हैं। इन फर्शों पर बजरी की मिलावट की गई थी। खुदाई के समय खदान में पानी आ जाने के कारण निचले स्तरों का अधिक बारीकी से अध्ययन संभव न हो सका। इस काल की पकी ईंटों से

बनी दीवाल की प्राप्ति विशेष उल्लेखनीय है। एक पर एक ईंट को सजा कर व्यवस्थित दीवाल का रूप दिया गया। उसके उत्तरी पार्श्व में पूरी उँचाई तक मिट्टी का भराव भी प्राप्त हुआ है। इस भराव और दीवाल का उद्देश्य स्पष्ट नहीं हो पाया, क्योंकि उत्खनन अत्यन्त सीमित था।

द्वितीय काल (मौर्य-सातवाहन-कुषाण काल)

न केवल मल्हार अपितु संपूर्ण छत्तीसगढ़ में इस काल में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। इस क्षेत्र में मिट्टी के परकोटा वाले दुर्गों का निर्माण अब बड़े रूप में हुआ। इस प्रकार के दुर्ग मौर्य काल के कुछ पहले अस्तित्व में आ चुके थे। परकोटों के बाहर और भीतर सुरक्षा हेतु परिखाओं का भी निर्माण हुआ। प्राचीन लेखों तथा ग्रन्थों में उल्लिखित आटविक राज्य यही रहे होंगे। इसी प्रकार की परिखाओं और परकोटे वाला गढ़ मल्हार में आज भी विद्यमान है।

उत्खनन में निम्नांकित वस्तुओं की उपलब्धि बड़े रूप में हुई: काले लाल रंग के ठीकरे, कटोरे तथा तश्तरियाँ, सामान्य लाल रंग के तथा भीतर की ओर मुड़े किनारे वाले प्याले, संग्राहक घड़े, एन. बी. पी. बर्तन का टुकड़ा, काले पालिश वाले बर्तन, लाल लेप युक्त एवं लाल पालिश वाले तथा ठप्पेदार बर्तन।

अन्य प्राप्त सामग्री में मौर्य तथा सातवाहन कालीन ईंटों से बने स्मारक, अर्द्धकीमती पत्थरों तथा पकी मिट्टी के बने मनके, अस्थि-बाणाग्र तथा दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली वस्तुएं उल्लेखनीय हैं।

इस काल के प्रारंभ में बने अनगढ़ तथा बिना तराशे हुए पत्थरों से बने मकान मिले हैं। इनके फर्श कड़ी मिट्टी तथा बजरी के सम्मिश्रण से बनाये गये थे। मौर्यकालीन ईंटों की दीवाल भी यहाँ से प्राप्त हुई। सातवाहन-काल में भवनों का निर्माण पकी ईंटों से होने लगा था। इस प्रकार के मकान गढ़ी से तथा उत्खनन में भी प्राप्त हुए हैं। खदान ४ में मिट्टी का भराव प्राप्त हुआ है; यह छोटी किंतु मोटी दीवाल का रूप लिये हुए है। यह भराव संभवत: स्थानीय 'पोटानार' तालाब के तटों के निर्माण से हुआ अथवा इसे सुरक्षा हेतु निर्मित दीवाल भी माना जा सकता है। यदि यह सही है कि मल्हार-४ के सामने स्थित 'पोटानार'-तालाब का किनारा इस दीवाल से प्रदर्शित होता है तब यह मानना पड़ेगा कि इस तालाब का निर्माण मौर्य-युग में हुआ था। कालान्तर में यह तालाब पुर गया और गुप्त-काल में पुन: उसे खोदकर उसकी मिट्टी को किनारों पर इकट्ठा कर कगार का निर्माण किया गया। खदान क्रमांक ४ में इस काल के स्तरों से पीली मिट्टी का कड़ा फर्श प्राप्त हुआ। इस फर्श पर जुड़वाँ चूल्हे बने हुए थे, पास ही एक संग्राहक घड़ा भी जमा हुआ प्राप्त हुआ।

इस काल के आहत सिक्के तथा सातवाहन शासकों के गजांकित सिक्के प्राप्त हुए हैं। सातवाहन शासकों की कतिपय गजांकित ताम्र-मुद्राओं पर सुवर्ण का अंश भी मिश्रित है। पोटीन के कुछ सिक्के भी मिले हैं, जिन पर हाथी बना है। उत्खनन के पूर्व इस क्षेत्र से अनेक कुषाण-सिक्के भी प्राप्त हो चुके हैं। हाल में मल्हार के पास कोसला ग्राम से विमकैडफिसेस का तांबे का सिक्का उपलब्ध हुआ है। दो पकी मिट्टी की मुहरें भी उल्लेखनीय हैं।

एक पर 'वेदसिरिस' लिखा है, दूसरी मुहर पर 'गामस कोसलीया' अंकित है।

इस भांति इस क्षेत्र पर मौर्यों और सातवाहन शासकों का आधिपत्य प्रमाणित हो जाता है।

तृतीय काल (शरभपुरीय तथा सोमवंशी-युग)

तृतीय काल उत्तर भारत के गुप्त-युग का समसामयिक था। इसे भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में दक्षिण कोसल पर शरभपुरीय तथा सोमवंशी राजवंशों का वर्चस्व स्थापित रहा। इन वंशों के समय में निस्संदेह दक्षिण कोसल ने भी स्वर्णयुग के दर्शन किये। सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति में तथा ललित कलाओं के क्षेत्र में इस काल में उल्लेखनीय विकास हुआ। ताला, अड़भार, मल्हार आदि के मंदिर तथा खरोद, शिवरीनारायण, सिरपुर, राजिम, पलारी, आदि के ईटों के मंदिर तत्कालीन स्थापत्य के उत्तम उदाहरण हैं। ताला, मल्हार, खरोद, अड़भार, राजिम, तथा सिरपुर में बड़ी संख्या में उपलब्ध पाषाण मूर्तियाँ सौन्दर्य तथा प्रतिमा-शास्त्र की दृष्टि से भारतीय कला के इतिहास में असाधारण स्थान रखती हैं। इन मंदिरों तथा मूर्तियों से इस क्षेत्र में विकसित शैव, वैष्णव, शाक्त, तथा बौद्ध धर्मों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है।

मल्हार उत्खनन में खदान सं० २, ३, ४, ५ तथा ६ से इस काल से संबंधित अवशेष पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इस काल के मृद्भाण्ड, लाल चमकीले, लाल लेपयुक्त, भीतर काले तथा बाहर लाल, सामान्य लाल, मोटे लाल तथा हाथ के बने नांद आदि के टुकड़ों के रूप में प्राप्त हुए हैं। इन मृद् भाण्डों में से कुछ पर उत्खचन तथा अन्य भांति के अलंकरण हैं। लाल लेप युक्त पालिश युक्त तथा केवलिन के बौद्ध पात्र 'धर्म करक' भी इस काल से प्राप्त हुए हैं। खदान ५ में इस काल के स्तर से एक घड़े की अंवठ पर गुप्त कालीन लिपि में 'महा स्वामी' लिखा हुआ है। इसी प्रकार खदान ४ से पकी मिट्टी का बना काले रंग का लटकन प्राप्त हुआ है जिस पर 'श्री कल्याणार्चीय' लेख एक से अधिक बार खुदा हुआ है। खदान ४ से एक अभिलिखित मुद्रा प्राप्त हुई है। इस मुद्रा पर गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में 'महाराज 'महेन्द्रस्य' लिखा हुआ है। यह मुद्रालेख प्रमाणित करने के लिए अत्यधिक महत्व का है कि गुप्त शासक समुद्रगुप्त ने कोसल के जिस महेन्द्र नाम के शासक को पराजित किया था वह मल्हार में राज्य कर रहा था। यह भी संभव है कि वह शरभपुरीय बंश का रहा हो और मल्हार का नाम शरभपुर रहा हो।

इस काल से दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली बहुविध सामग्री प्राप्त हुई है। पकी मिट्टी के खिलौनों के अतिरिक्त मनके, अर्धकीमती पत्थरों के मनके, कीमती पत्थरों के नग, अस्थि बाणाग्र, लोहे के वाण-फलक तथा भाले के फलक, तांबे की अंजन शलाकायें तथा अस्थि का बना चौपड़ खेलने का पांसा भी प्राप्त हुआ है।

इस काल में निर्माण का कार्य व्यापक रूप से हुआ। खदान ५ के उत्खनन में शिव-मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए। मंदिर की स्थापत्यशैली के आधार पर इसे छठी-सातवीं शती का माना गया है। खदान ३, ४, ५ में इस काल के निचले स्तरों से अनगढ़ तथा तराशे पत्थरों के बने मकान प्राप्त हुए। इनके फर्श ईटों के टुकड़ों, बजरी तथा काली-पीली मिट्टी को कूटकर बनाये गये थे। फर्श को मजबूती देने हेतु काली मिट्टी फर्श के नीचे जमायी जाती थी।

खदान ३ से गुप्त कालीन भवनों में एक नाली प्राप्त हुई, जो ईटों की बनी हुई थी। इसी काल से भवन की दीवाल मिली, जिसके निचले भाग में सिलेटी पत्थरों को तराश कर लगाया गया था। तथा ऊपरी भाग में ईटों का प्रयोग किया गया था। इस भवन के फर्श से बड़ी मात्रा में तराशे हुए अपूर्ण अर्धकीमती पत्थरों के मनके प्राप्त हुए। अनुमान है कि यह स्थल मनके निर्माण की उद्योग शाला रहा होगा।

खदान ४ से वज्रयान संप्रदाय का बौद्ध मदिर तथा खदान ६ से चैत्य के अवशेष प्राप्त हुए। मल्हार में बौद्ध धर्म के प्रचार के संबं. में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारी मिली है।

खदान ४ के सामने ६० एकड़ रकबा में फैला हुआ एक तालाब था जिसे अब 'पोटानार' कहा जाता है। इस तालाब का निर्माण गुप्त काल में हुआ था। तालाब को खोदकर उसकी मिट्टी किनारों पर तट बनाने हेतु डाल दी गई थी। इस काली मिट्टी से बने तटस्तर आज भी स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। उत्खनन में यह काला स्तर स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। सातवाहन कुषाण सतहों के ऊपर इस सतह का पाया जाना यह स्पष्ट रूप से द्योतित करता है कि इस तालाब का निर्माण ईसवी चौथी शती में हुआ होगा। इतने विशाल काय तालाब का निर्माण कर्ता कोई बड़ा शासक होना चाहिए।

खदान ४ में प्राप्त बौद्ध मंदिर अपनी विशेषता रखता है। इस मंदिर के बीच में ईटों के टुकड़ों को काटकर चबूतरा बनाया गया था। इस चबूतरे पर पकी ईटों का फर्श बना हुआ था। फर्श पर बौद्ध देवता 'हे-वज्र' की प्रतिमा स्थापित थी। चबूतरे के तीनों ओर भारी पत्थर जड़े हुए थे। जो संभवतः चबूतरे पर बनी छत के स्तंभों को संभालने के लिए थे। पीछे खड़ी दीवाल थी तथा चबूतरे के तीन ओर प्रदक्षिणा पथ बना था। चबूतरे के सामने एक गलियारा था। तीन कमरे उत्तर दिशा की ओर तथा एक-एक कमरा पूर्व तथा पश्चिम दिशा में बना हुआ था। ये कमरे आकार में छोटे थे तथा संभवतः भिक्षुओं के निवास हेतु थे। उत्तर के तीन कमरों में से बीच के कमरे में एक खड़ा शिला खण्ड प्राप्त हुआ। यह शिला खण्ड ध्यान आदि करने हेतु पीठ या आसन का काम करता रहा होगा।

इस बौद्ध विहार के पश्चिमी पार्श्व में ठीकरों का एक स्तर पाया गया। इससे यह प्रमाणित होता है कि विहार में निवास करने वाले भिक्षु अपने टूटे फूटे बर्तन इधर फेंका करते थे। इन्हीं के बीच 'श्री कल्याणार्चीयं' अभिलेख युक्त पकी मिट्टी का बना लटकन प्राप्त हुआ। बौद्ध पात्र तथा पक्की मिट्टी की बनी टिकियाँ बड़ी संख्या में मिलीं। पूर्व तथा उत्तर दिशा में इस भवन से संबंधित स्तरों में ईंटें तथा बहुसंख्यक ईंटों के टुकड़े भी मिले। उत्खनन से यह भी ज्ञात हुआ कि नींव के पत्थरों को लोग उठा ले गये। अतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि इस भवन की नींव तो बड़े पत्थरों की बनायी गयी थी। पर उस पर दीवालें ईंटों की बनायी गयी थीं, जो कालान्तर में गिर गयी। यहां से ईंटें तथा पत्थर ग्राम वासी अपने भवनों के निर्माण हेतु उठा ले गये।

मल्हार ग्राम के उत्तर की ओर वर्तमान जैतपुर (प्राचीन चैत्यपुर) ग्राम के समीप पश्चिमी ओर खदान-७ (१२×१२ मीटर) लगायी गयी। इस के उत्खनन से बौद्ध मदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। मंदिर का निर्माण

स्थानीय तराशे हुए पत्थरों से किया गया। कालांतर में मंदिर के ध्वस्त हो जाने पर उस का मलवा आसपास के क्षेत्र की सफाई करते समय निकाला गया, मंदिर की नीवों में लगे पत्थरों पर बाहर गहरी रेखाओं द्वारा कटाव किया गया। पूर्व की ओर चार ऊंचे चबूतरों का निर्माण किया गया, जिसपर प्रतिमाएं स्थापित रही होंगी। मंदिर का प्रवेश–द्वार पूर्व दिशा की ओर था। पश्चिम की ओर इसी मंदिर से लगे लघु स्तूपों के चिन्ह मिले हैं। समीप ही बौद्ध-विहारों की नीवें प्राप्त हुई हैं, जो लघु पत्थरों से निर्मित हैं। विहारों में बौद्ध भिक्षु रहते थे।

आवासों से गंदे पानी के निकास के लिए नालियों का निर्माण किया जाता था। दक्षिण की ओर इस खदान को २-५० मीटर और उत्तर की ओर भी २-५० मीटर आगे बढ़ाया गया। मुख्य मंदिर के अंदर ऊपरी स्तर पर कुटी हुई ईटों का बड़ा चबूतरा मिला जो मंदिर की दीवालों से संबद्ध है। पश्चिम की ओर अर्द्धवृत्ताकार ऊंचे चबूतरे के होने का संकेत मिलता है, जहां पर मुख्य बौद्ध प्रतिमा स्थापित रही होगी। इस स्थान में उत्खनन के पूर्व इसी खदान के समीप से हाल में एक कृषक को बोधिसत्व की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है, जो स्थानीय केन्द्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। खदान के पश्चिमी भाग से पत्थर के लगभग २.५० मीटर लम्बाई वाले चार द्वारस्तंभ प्राप्त हुए हैं जो मुख्य प्रतिमा के चारों ओर लगे रहे होंगे। उत्तरी भाग के सामने एक वृत्ताकार चबूतरा मिला है, जिसमें छोटे पाषाण खंड तथा पकी ईटों के टुकड़े लगे हैं। इससे यहां एक बड़े स्तूप होने की संभावना व्यक्त होती है। उसके मध्यभाग में मंजूषाकार प्रस्तर रखा है। खदान की लगभग १.१० मीटर गहराई पर उत्तर तथा पूर्व मंदिर के बाहरी ओर कुटी हुई ईंटों का फर्श मिला है।

इस खदान से प्रस्तर-निर्मित अलंकृत मकर-मुख के अन्दर बैठी गंधर्व-आकृति बुद्ध की लघु प्रतिमा का सिर कमल अलंकरण से युक्त छोटे आकार के प्रस्तर खण्ड तथा पद्मासन पर बैठे हुए ध्यानस्थ बुद्ध प्रतिमाओं के दो खंड विशेष महत्व के हैं। ऊपरी वृत्ति के प्रभामंडल का आकार बड़ा है तथा नीचे वाली का प्रभामंडल छोटा है। दोनों प्रतिमाओं के चारों ओर बौद्ध आकृतियों वाली अभिलिखित मुद्राओं का ठप्पांकन मिला है। नीचे के खण्ड में बुद्ध भगवान् दोहरे कमलपर पद्मासन बैठे हैं। नीचे कमल की पंखड़ियां बड़े कलात्मक ढंग से उकेरी गयी हैं। यह उपलब्धि विशेष महत्व की है। इसके अतिरिक्त इसी खदान के स्तर-२ से बहुसंख्यक पकी मिट्टी की विविध मृण्मुद्राएं प्राप्त हुई हैं, जिन पर ७वीं -८वीं शती की ब्राह्मी लिपि में बौद्ध मंत्र अंकित हैं। स्तूप आकार का एक स्फटिक भी प्राप्त हुआ है, जिसका धार्मिक उपयोग रहा होगा।

उपलब्ध वस्तुओं में अर्धकीमती पत्थरों तथा पकी मिट्टी के मनके 'धर्मकरक' शतरंज का मुहरा, शंख की चूड़ियों के टुकड़े, लोहे के बाणफलक तथा दैनिक उपयोग की विविध वस्तुएं उल्लेखनीय हैं।

बौद्ध मन्दिर की नींव स्थानीय पत्थरों की तथा ईटों की थी। कहीं-कहीं कलात्मक ईटों का उपयोग गवाक्ष आदि के निर्माण में किया गया है। सादे कटाव वाली पकी ईटों के अवशेष भी उत्खनन में मिले हैं। इस खदान में अब तक किये गये उत्खनन से बौद्ध-धर्म संबंधी अनेक महत्वपूर्ण वस्तुयें प्राप्त हुई हैं। इनसे

प्रमाणित होता है कि मल्हार में जैतपुर (चैत्य-पुर) क्षेत्र बौद्ध धर्म की महायान शाखा का बड़ा केन्द्र था। धीरे-धीरे यहां वज्रयान धर्म का विशेष प्रभाव फैला, जिसका प्रसार उड़ीसा क्षेत्र में भी हुआ।

चतुर्थ काल (परवर्ती सोमवंशी युग)

तृतीय काल में ही दक्षिण कोसल की राजधानी मल्हार से उठकर सिरपुर चली गई थी। परिणामस्वरूप मल्हार का राजनीतिक महत्व घटता गया। बूढ़ीखार तथा जैतपुर के क्षेत्रों में पहले आबादी थी। अब क्रमशः आबादी दक्षिण की ओर बढ़ती गई। खदान ४ तथा ६ के उत्खनन से यह बात सिद्ध हुई है। खदान ३ तथा ५ से परवर्ती काल के भवनों के अवशेष बराबर मिले हैं।

विवेच्य काल में एक विशेष प्रकार के मृद्भाण्ड प्रयोग में लाये गये। उन पर ठप्पों से बने अलंकरण तथा स्वर्ण लेप प्राप्त हैं। अनुमान है कि महानदी में बालपुर-तट से मिलने वाली स्वर्ण-बालुका का प्रयोग इसमें होता था। इस प्रकार के मृद्भाण्ड मल्हार को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिले। साधारणतः इस काल के मृद्भाण्ड लाल तथा अभ्रक के लेप सहित प्राप्त होते हैं।

इस काल से लोहे की कीलें, बाण फलक, पत्थर, कांच तथा पकी मिट्टी के मनके तथा बौद्ध मंत्रों से अभिलिखित पकी मिट्टी की बहु-संख्यक मुहरें प्राप्त हुई हैं।

इस काल के भवन अधिकांशतः पकी ईंटों के बने हैं। इनमें से कुछ भवन पूर्व काल के भवनों की ईंटों से बनाये गये। पत्थरों को तराश कर भी भवनों का निर्माण किया जाता था। फर्शों में पत्थर, ईंटें तथा ईंटों का चरा भरा जाता था। खदान ५ में पत्थर के फर्श पर पशुओं को पानी पिलाने हेतु पत्थर के बने चौकोर कुण्डे मिले हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में 'फोटना' कहा जाता है।

पंचम काल (कलचुरि युग)

इस काल में मल्हार के राजनीतिक महत्व का ह्रास हो चुका था। परन्तु धार्मिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में मल्हार की अब भी गणना थी। मल्हार को नया नाम 'मल्लाल पत्तन' प्राप्त हुआ। कलचुरियों के अभिलेखों में यही नाम प्राप्त होता है। यहाँ पाये गये अनेक लेखों से इस क्षेत्र के धार्मिक तथा व्यापारिक महत्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। इस काल में अनेक मन्दिरों का निर्माण यहाँ हुआ। केदारेश्वर तथा देवी डिड़िंगदाई के मन्दिर इसके प्रमाण हैं। धूर्जटि के मन्दिर का भी उल्लेख एक शिलालेख में मिला है। मल्हार तथा उसके आसपास मन्दिरों तथा अन्य इमारतों के बहु-संख्यक अवशेष मिले हैं। इनसे पता लगा है कि कलचुरियों के शासन काल में यहाँ वास्तु तथा मूर्तिकला का बड़ा विकास हुआ।

इस काल में भी नगर अपने प्राचीन स्थल से हटकर दक्षिण की ओर बढ़ता गया। पुराने स्थान पर भी कुछ भवनों का निर्माण हुआ। उत्खनन में इस काल से संबंधित जो भवन प्राप्त हुए हैं वे पुरानी ईंटों तथा पत्थरों के बने हैं।

इस काल में सामान्य लाल रंग के मृद्-भाण्डों का निर्माण होता रहा। कटोरे, दीपक, प्याले, तथा छोटे बड़े संग्राहक बर्तन (नाँद आदि) इस काल में बने। इस काल में पकी मिट्टी के मनके, लोहे की वस्तुएं तथा कांच की चड़ियां भी बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं। अनेक चरि नरे के तांबे के सिक्के भी मिले हैं।

MALHAR

The region of South Kosala played a significant role in the political and cultural history of ancient India. The available literary and archaeological evidence indicates that by about c. 600 B. C. some parts of this region had become well advanced in material culture. From that time till about the end of the early Medieval period (c. 1200 A. D.) there was a continuous growth of civilization in this area.

Nature has showered its bounties on south Kosala, The mountain range, called Mekala, is spread in the region from west to east. Mahānadī is the largest river of South Kosala. The river Son also passes through its north-eastern parts. Other rivers Maniārī, Arpā, Līlāgar, Sivanātha, etc., flow through the region. In spite of these rivers, there has been scarcity of water in several parts of south Kosala throughout its long history. It was, therefore, necessary to dig lakes, ponds and wells and make sufficient provision for water in the habitational areas. The Medieval dynasties, ruling over South Kosala, paid their special attention to the water problem. Like the Chandellas and the Kalachuris, the Somavamśī rulers of Kosala got excavated several big and small lakes in their region.

The name Kosala, given to this part of the country, was after the (northern) Kosala with its capital at Ayodhya and Srāvastī. To distinguish it from Uttara Kosala, the name Dakshiṇa was affixed to it. The recent excavations conducted by the University of Sagar at Malhār (ancient Mallālapattana) in the Bilaspur district of Madhya Pradesh have yielded one inscribed baked clay sealing bearing the legend *gāmasa Kosalīyā* written in beautiful Brāhmī characters of the 2nd century A. D. While looking for an ancient locality of the name of Kosala or Kosalī near Malhār, we were happy to find out one village Kosalā about 16 kms. from Malhār. The antiquity of this large site, which has several mounds and the remains of a moat all round, go back atleast to the Maurya period. Apart from early historical pottery, a copper coin of the Kushāṇa emperor Vima-Kadphises was acquired by us from the site.

The exact time when this region got the name of Kosala or Dakṣiṇa Kosala, is not definitely known. It is quite possible that the reminiscences of the route of Śrī Rāma, king of Ayodhya (time about c. 1900 B. C.), who went to Daṇḍakāraṇya through this area, were quite strong upto the 4th century A. D. In the famous Allahabad pillar inscription of the Gupta monarch Samudragupta the name *Kosala* occurs. It can, therefore, be said that the appellation Kosala was given to this area before the Gupta period.

It may be mentioned here that in the Purāṇic lists of the *janapadas* and also in those of the epics, (Dakṣiṇa) Kosala is mentioned alongwith Mekala (the region covered by the major parts of Satna, Rewa, Shahdol, Sidhi and Sarguja districts.

The area to the south of these districts was called Kosala. In course of time, however, the region of Mekala was merged into Kosala, which assumed the form of Mahākosala. The recent explorations conducted by me and my colleague (previously student), Dr. S. K. Pandey, have brought to light quite a large number of fortified mud-forts, which represent the ancient *āṭavika durgas*. We are of the opinion that the name Chhattisgarh given to [Mahā] Kosala in the late Medieval period may have been originated from these ancient mud-forts, most of which are located in the Bilaspur district.

The ancient main route joining north India with south-eastern sea-coast passed from Kauśāmbī via Bharhut through the present districts of Satna, Shahdol, Bilaspur and Raipur. Important towns like Bāndhogarh, Kharod, Sharabhapura (later called Mallālapattana) and Śrīpura (modern Sirpur) were located on this route. The region of South Kosala had thus close contacts with Kaliṅga from very early times. After the fifth century A. D. these contacts grew up considerably. When the later Sōmavaṁśīs established their rule in the extensive area stretching from the western boundaries of South Kosala upto the sea-coast of Kalinga, this land was knit together politically and culturally. The recent field work conducted by us at Malhār has brought to light an interesting evidence that the Tantrayāna of Buddhism grew up in this area from about c. 700 A. D. and continued upto about c. 1000 A. D. This cult was also developed in Orissa almost during the same period. It is evident that in the region of the Sōmavaṁśīs not only Śaivism and Vaiṣṇavism had their unhampered growth, but also the Tantrayāna of Buddhism flourished which became quite popular in the period in eastern and south-eastern parts of India. At Malhār, a temple-complex of the Buddhist deity Hevajra, along with his image and several inscribed clay sealings, has been excavated. The village near this area is called Jaitpur (apparently from the old name Chaityapura, i. e. a town of Buddhist shrines).

We have yet to determine the exact relationship between the early Pāṇḍuvaṁśī rulers of Mekala-Kosala with the main Sōmavaṁśī dynasty. Similarly, at the present state of our knowledge, the exact relationship of the early *Pāṇḍuvaṁśīs* or the Śarabhapuriyas with the Magha rulers of Kauśāmbī and South Kosala cannot be ascertained. The evidence at our disposal tends to show that the Magha rulers, like the Bodhis of Tripurī (of 2nd-3rd centuries A. D), were considerably influenced by the Sātavāhanas of Deccan. The sealings and the matrionomic names of the Maghas and the Bodhis amply attest to this. The Pāṇḍuvaṁśī dynasty of king Jayabala ruled over Mekala and parts of Kosala. This dynasty closely followed several traits of the Magha family. Recent discoveries from Būrhīkhār (part of Malhār) of a set of three copper-plates and one single plate of another set are of great importance. In the first complete set of three plates[1] we find the name of Śūra-

1. Published in *Studies in Epigraphy*, vol. III (Mysore, 1976), pp. 183–93 and plates by B. Sitaraman and M. J. Sharma

bala, son of Bharatabala (the great grandson of the founder of the dynasty Jayabala). This name of Śūrabala is known for the first time and carries the dynasty of Jayabala further to a generation after Bharatabala. In the set of three plates referred to above (line 36), Śūrabala is given another name Udīrṇṇavaira. This king, according to the inscription, made a grant of a village called Saṅgama-grāma, along with its usual privileges, to god *Jayeśvara Bhaṭṭāraka* (a name of Śiva)- This grant was made to the Śiva temple after the king Śūrabala had acquired it from Narasimha, a son of Boṭa and grandson of the merchant Manoratha.

I have identified the village Saṅgama-grāma with the village Tāla (also called Saṅgama) near the confluence of the rivers Maniārī and Śivanātha in the Bilaspur district. Near the confluence stood two Śiva temples (constructed in the 5th century A. D.). The main temple was probably that of Jayeśvara Bhaṭṭāraka.

The single plate referred to above has recently come to my knowledge through the courtesy of its owner Sri Chhedi Lal Pandey at Malhār. He informed me that the plate was found by him at Būrhīkhar. It is the second plate of the complete set of three which according to Sri Pandey were previously joined together and formed the entire record. Unfortunately the first and the last plate are now lost.

The extant copper plate measures 17.50×10 75×.03 cms. It weighs 291 grammes. The central hole on the plate, meant for fastening together the three plates, has a diameter of .06 cm.

The plate bears 11 lines of writing, carved beautifully on it. The back is plain.

The Brāhmī characters of the plate are nail-headed of Central Indian type. They are cut quite deeply and carefully.

The earlier part of the inscription is in prose. There are two verses in the *upajāti* metre eulogising king Nāgabala. It may be mentioned here that in the previously two known copper-plate grants of the early Pāṇḍu rulers, only one verse is devoted to Nāgabala. After the 10th line (in prose) of the new inscription, an incomplete verse in the *Mālinī* metre is given about Indra-bhaṭṭārikā, the queen of Nāgabala, and the mother of Bharatabala.

The specific purpost of the copper-plate is not known, as the third plate containing the same is lost, It may have referred to some donation made by the queen of Bharatabala and some other member of her family.

It seems quite certain that the capital of the dynasty of Jayabala was Śarabhapura (earlier name of Malhār). Another set of three copper-plates of this dynasty was discovered at Bamhanī in the Shahdol district of Madhya Pradesh, It was published by Dr. B. Ch Chhabra,[1] who discussed in some detail the problems pertaining to the early Pāndava dynasty of Kosala. The other plates (another set of three

1. *Epi Ind.*, Vol. XXVII, pp. 132 ff; *C.I I*,, Vol. V pp. 82 ff.

and one single plate) mentioned above come from Būrhīkhār (a part of Malhar village). Both the areas of Mekala and Kosala were in the possession of this dynasty at the time of Śūrabala.

It seems likely that prince Udayana came to the throne of Śarabhapura after the rule of Śūrabala in the last quarter of the 5th century A. D. and his branch of the sōmavaṁsi kings ruled over that area upto about the end of the 7th century A. D.

Another interesting discovery from the excavations at Malhār is that of an inscribed clay sealing bearing the legend '*Mahārāja Mahendrasya*', written in the Gupta Brāhmī characters. I feel inclined to identify this ruler Mahendra with his namesake mentioned in the Allhabad pillar inscription of Samudragupta *(Kosakala Mahendra)*, If this is accepted, it can be said with certainly that the capital of Mahendra was no other than Malhār (then known as Śarabhapura). In the said inscription Mahendra is called *Kosalaka* (ruler of South Kosala). Beyond Kosala in the south eastern direction was Mahākāntāra (kingdom of the great forest), where another king Vyāghrarāja was ruling. At the present juncture, it is not possible to determine the exact relationship of Mahendra with the dynasty of Jayabala. It seems very probable that Mahendra was the fore-runner of this dynasty. The contribution of this family of kings to art and culture of the region is amply attested to by the monuments and plastic art, some of exquisite beauty discovered at Malhār, Kharod, Aḍbhār, Tālā and Sirpur. This wasd later on continued by the Sōmavaṁsīs, who adopted several other traits of the early Pāṇḍava rulers.

PRE-AND-PROTO HISTORY

The excavations at Malhār, has India cated some traces of Chalcolithic culture at this site. Painted pottery, including painted Black-and-Red Ware has been found here A similar painted Black & Red Ware has been picked up at Kharod about 50 kms. from Malhar, The microlithic tools are however conspiquious by their absence at Malhar.

The next culture which followed the Chalcolithic culture was Megalithic. So far we have not been able to trace any megaliths in this region except in Raipur and Drug districts. From the Malhar excavation pottery akin to South Indian Megalithic pottery has been recovered from here. The two periods, Chalcolithic and Megalithic, are over lapping and there does not seem to be much change in the material culture. The Chalcolithic perioh in this region must have existed before about c. 1200-1000 B. C.

Any definite evidence of the cultural equipment of the people during the period between c. 1000 B. C. and the Maurya period is not known. The pottery of this period is dominated by un-painted Black-and-Red Ware, a few of them having graffittic marks. The other pottery includes Black Burnished Ware. A piece of dish-on-stand is in black ware has also been found in the excavation. The pottery akin to Megalithic type, red slipped, coarse red ware and black polished ware, were recovered from the lower level. A wall of

undressed stones mixed with brick-bats has been found from this level. A floor connected with this structure has been revealed having a black cotton soil base covered with yellow *kankari*. Dung was applied over this floor. Further excavation may reveal more information about this phase.

History

The problem of the location of the capital town of the Śarabhapura dynasty of South Kosala has not yet been satisfactorily solved. The town Śarabhapura was named after the first ruler of the dynasty *Sarabharāja*. Most of the charters of this dynasty were issued from there. Three charters of the dynasty were issued from *Srīpura*. It appears that *Srīpura* was founded by king *Sudevarāja*, a ruler of the dynasty. One of his grants was issued from *Srīpura*. Later on his younger brother *Pravararāja II* shifted the capital from *Sarabhapura* due to some political reasons to Sirpur (Śrīpura).

Scholars have tried to identify *Sarabhapura* with several places situated in Madhya Pradesh, Orissa and Andhra Pradesh. Herein an attempt has been made to locate *Sarabhapura* on the basis of recently conducted explorations and excavations in the Chhattīsgarh region.

Dr. Hiralal long ago put forth a suggestion that the Sarabhapura group of rulers ruled after the *Sōmavaṁśī* kings and that Srīpura was renamed as Sarabhapura. This theory had to be given up after discovery of the Kauvātāla copper-plate of Sudevarāja dated in his 7th regnal year and issued from Śrīpura. His other earlier and later grants were issued from Śarabhapura. Thus, Śarabhapura and Śrīpura were two different towns even at the time of Sudevarāja. Secondly, the importance of Śrīpura begins with Sudevarāja who appears to be the founder of that city.

The excavations conducted by Dr. M. G. Dikshit at Sirpur proved that the antiquity of that town did not go prior to the 5th century A. D. A gold coin of *Prasannamātra* was recovered from the earliest stratum of Sirpur. D. C. Sircar and M. G. Dikshit, while editing the Pipardula and Kurud plates of Narendra respectively, modified the views of Dr. Hiralal by saying that the capital Śarabhapura probably lay in the neighbour-hood of Sirpura, as most of the grants at that time were confined to Raipur district. G. Bhattacharya and M. Sivayya, while editing Malhār plate of Jayarāja (year 9), also supported the same view.

The second identification was proposed by Sten-Konow. His conjucture was that Śarabhapura might be identical with modern *Sarabhavaram*, situated 20 miles north-west of Rajamundri in Andhra Pradesh. This view has been discarded owing to lack of any records of Śarabhapura rulers from Andhra Pradesh.

Rajendra Lal Mitra suggested that Śarabhapura might be the old name of Sambalpur in Orissa. Lochan Prasad Pandey proposed another place-name Śarappur (or Śarabhagarh) in the former Gangapur State of Orissa. V. V. Mirashi, however, agreed with this indentification.

Before coming to any conclusion, it would be worth-while to consider certain

basic points connected with the problem. These are as follows :

(1) The name of the capital was given after the name of the founder of the dynasty. The town continued as capital of the dynasty for about two centuries.

(2) The dynasty of Śarabhapura had a glorious reign of about 8 or 9 rulers, who contributed considerably to the political and cultural history of Chhattīsgarh region.

(3) A capital is supposed to have an extensive township with well-built houses, roads, lanes, drainage, water-supply, market-place and public centres for worship.

(4) Most of the records issued from the capital should be recovered from the area in and around it.

(5) A large number of towns and villages mentioned in these charters should be located not far away from the capital.

(6) There should be cogent reasons for the change of the capital and also for the change of the name of the town.

Before considering these points We would like to identify *Sarabhapura* with *Malhār (Mallāla pattana)* in Bilaspur district of M. P. situated 35 kms. east of Bilaspur town on Bilaspur *-Jondharā* road, The reasons for this are given point-wise below :

From the records of the Śarabhapura dynasty it is known that the first ruler of this dynasty was Śarabharāja. He founded the capital town, which was naturally named after him as Śarabhapura. Some scholars have thought that in the beginning the dynasty was ruling somewhere in the eastern part of Chhattīsgarh and later on the area around Sirpur was conquered by Jayarāja, and lastly Sirpur was made as their capital. This view is simply conjuctural, because none of the records of Śarabhapura rulers supports this migration theory from east to west. In fact, almost all the rulers of this dynasty, and at least two rulers of Somavaṁśī dynasty of Mekala, ruled over Śarabhapura. Their total reign period would come to about 200 years. The last ruler Pravararāja II shifted the capital from Śarabhapura to Śrīpura.

It is also a recognised fact that the Śarabhapura dynasty was contemporary to the Imperial Guptas. About 8 or 9 rulers ruled from this capital as can be confirmed from the Viṣṇu-Purāṇa. The recent excavations conducted at Malhār by the University of Sagar have yielded a clay sealing of Mahārāja Mahendra. His name is written in the Gupta Brāhmî characters. This discovery puts strength to the conjecture that Mahendra was one of the rulers of Malhār, the capital of South-Kosala. Mahendra was the contemporary of Samudragupta, as is known from the Prayāga Praśasti of the Gupta monarch. If Mahendra can be attached to any dynasty, it is only that of Śarabhapura and none else.

The rulers of Śarabhapura dynasty had a glorious reign. The stone temples of Tālā, Malhār, Kharod and Adbhāra and a few brick-temples at Kharod owe their existence to these rulers. If we try to consider the question of a capital from the growth of art and architecture, we fail to find any other place named by scholars to be befitting for a capital. Only Malhār

can be crowned with that glory. This could not be possible unless Malhār was the capital of that region for a considerable long period.

The concept of an ancient Indian capital was that it should have a palace with a proper defence around it, a well-planned township with proper roads, lanes, drainage and water facilities, markets and religious buildings.

Applying the above-mentioned criteria, we can consider only three ancient towns for our purpose in the whole of Chhattīsgarh. They are Sirpur, Rājim and Malhār. During the recent explorations in the Bilaspur, Raipur and Durg districts of Chhattīsgarh we could not find any other town which may fulfill the required conditions. The possibility of Sirpur is ruled out due to its late origin as a township. Rājim has some ancient temples; but there are not sufficient remains to indicate any extensive township there. The third town Malhār fulfils the requirements.

Malhār is surrounded by three rivers : Arpā in the west, Lilāgar in the east and Sivanatha in the south. The town has a prominent mud-rampart with two ditches, one external and the other internal. Inside the circular internal ditch is a mound covering the main building-complex called *garha* (fort). This fort represents the ancient citadel. The habitational area of the township was to the northern and eastern sides of the fort. The extent of the township is about 3 kms. in length and 2 kms. in width. A large number of tanks still exist around the old township. The biggest tank, locally called as Potānāra, submerges about 60 acres of land. The foundations of massive building structures, traces of stone paved roads, small and big wells and the remains of religious monuments at Malhār are remarkable in this respect. A very large number of stone sculptures—Hindu, Buddhist and Jaina, ranging in point of time between c. 200 B. C. and 14th century A. D., have been discovered in and around Malhār.

The political importance of ancient Mallāla-pattana is attested to by the discovery of a large number of copper-plates, stone inscriptions, seals, and sealings at the site. Out of the known 14 grants of the Śarabhapura rulers, 4 have been discovered at Malhār. The grants usually are related to the donations made to the Brāhamaṇas, who belonged to Malhār town or the nearabout areas. The donees of the copper-plate grants must have preserved the records carefully. When the capital was shifted from Malhār to Sirpur, some of the decendents of the original donees may have shifted from the original capital to the new capital. This is the reason why some of the grants have been discovered in and around Sirpur. The villages mentioned in the charters are mostly located in the area of Malhār.

The villages mentioned in the copper-plate charters of the Śarabhapurīya rulers have been identified in the districts of Bilaspur, Raipur and part of Raigarh. The rule of this dynasty, therefore, covered the area of these districts along with some contiguous regions. Names of some of the villages in the inscriptions are given below :

Mahārāja Narendra, the second ruler of the dynasty, issued two grants. The Pipardulā grant mentions *Nandapura* Bhoga and *Sarkarāpadra* village. The village *Nandeli* and *Sakara* near Kōta and Janjgir respectively were identified by D. C. Sircar. This identification does not seem to be correct. Villages *Nānd ghāta* and *Sakarrā* both on Bilaspur-Raipur road, at a distance of 40 kms and 15 kms. respectively from Malhār can be the correct places to be identified with the two names. The Kurud grant of Narendra mentions the village *Keśavaka* in *Chulladasīmābhōga*. This is no other than Seorinārāyaṇa (in Bilaspur district), where a locality called Lodhabgda and a tank called *Ladhamā* still exist along with the temple of Keshava-Nārāyaṇa.

The Ārang plate of Jayarāja mentions a village *Pamva* in *Pūrvarāṣṭra*. This Pūrvarāṣṭra must have existed towards the east of the capital. If Balchandra Jain's identification of *Pamvā* with Pāmgarh is correct, then Pūrvarāṣṭra will be the area across the river Līlāgar towards the east of Malhār.

In the Malhār copper plate of Jayarāja, *Antaranālaka* and *Kadambapadrullaka* are mentioned. These can be identified with *Ataria* and *Dullakpur* respectively in the Mungeli tehsil of Bilaspur district. Another Malhār plate of Jayarāja mentions *Mokkepika Nagarōttarapaṭṭa* and *Śabara bhogikā*. Bhattacharya & Sivayya have correctly identified the first two with *Mopkā* on the river Arpā, (about 20kms. north of Malhār) and *Nagarottarapaṭṭa* as Nargoda respectively. *Sakarabhōga* was the entire area containing these and other adjceant villages,

The Raipur plate of Sudevarāja mentions *Pūrva-Rāśtra* and viliage *Srīsāhika*. The village Srīsāhika can be identified with *Sarasaha* near Loharsi on the right bank of river Seonath, south of Malhār. The Sarangarh plate of Sudevarāja refers to a village *Chullendraka* in *Tundaraka Bhukti*. The villages has been identified with *Churatela* near Seorinārāyan. Tunderaka is *Tannoda*.

In the Thakurdiya plate of Pravarārāja II occurs the village-name *Āśādhaka* in *Tuḍa Bhukti*. They have been identified with *Asoda* and *Tunda* respectively near Seorinarayan. The Malhār plate of Vyāghrarāja mentions *Prasannapura* on the bank of river *Nidilā* in Pūrva-Rāṣṭra. This *Nidilā* can be identified with *Līlāgar* and the *Pūrva-Rāṣṭra* was the region across the left bank of this river. Prasannapura has to be searched for somewhere near the source of the river Līlāgar.

The villages, the bhuktis, bhogas, etc, referred to in the inscriptions mentioned above, are thus located within a radius of 50 kilometers from Malhār. Most of the villages donated by the rulers of Śarabhapura are now located in the Bilaspur district, not very far from Malhār. The claim of Malhār as the capital of the rulers of the Śarabhapurīyas can thus easily be established.

The question arises as to why the name of the capital was changed from Śarabhapura to Mallālapattana. Recently two copper plate records have come to light from Malhār, one of these was issued by Bharatabala and the other by his son Śūrabala, These rulers belonged to the Soma-

vaṁśī dynasty of Mekala Bharatabala was married to a princess of SouthKosala called Lokaprakāśā. It seems that she was the daughter of Sudevarāja. who became the father-in-law of Bharatabala. Sudevarāja had probably no sons and he divided his kingdom of South Kosala into two parts, The northern part was given by him to Bharatabala, while the southern one was given to Pravararāja II, the younger brother of Sudevarāja. Śrīpura (Sirpur in the Raipur district) was made the capital of the Southern part From the later inscriptions of the Sômavaṁśī rulers it appears that Udayana, perhaps a younger brother of Śūrabala, was put in charge of the southern' kingdom. He was attacked by Pravara II, who captured the capital. Indrabala, the son of Udayana, avanged the defeat of his father by attacking Sirpur and defeating Pravara II. At the time of Nannarāja I, Sirpura was made the capital of the Sōmavaṁśī rulers. Thereafter the importance of Sarabhapura began to decline.

The name Mallālapattana is first found in the records of the Kalachuri rulers (of Ratanpur). The Kalachuris may have changed the old name Śarabhapura, giving to it the new appelation Mallālapattana, presumably after the name of Malhārī Śiva (killer of demon Malla). It is a well-known fact that the Kalachuris were devout Śaivites. There can be another possibility, Before the Kalachuris this area was for sometime under the rule of kings of the Bāṇa dynasty, The name of one of the Bāṇa rulers was Malladeva. He might have renamed śarabhapura after his own name.

There are numerous examples in Indian history concerning changes of the names of even important towns due to one reason or the other.

The history of Dakṣiṇa Kosala, now called Chhattīsgarh, bristles with a number of controversial points. Kalachuris were the last important rulers of this area. The known historical account of the region before the rule of the Kalachuris is rather meagre. After the disintegration of the Maurya empire the dynasties which ruled over this area were, those of the Sātavāhanas, the Riṣikulatulyas, the Sarabhapuriyas, the Sōmavaṁśīs and the Bāṇas. Due to the scarcity of the literary and other reliable evidence, the only possible source for the early history of Chhattīsgarh is the evidence obtained from explorations and excavations in the region

Early Historical Period

During the early historical period a marked political change took place in this region. No written records of this change have been found so far from here indicating the political situation. The archaeological evidence gives some idea about the material culture of Chhattīsgarh from about c. 600 B. C. to the pre-Mauryan time.

As regards the Mauryas, we can presume that the area under discussion must have been included in the territory of the Maury a emperors. The Maurya empire was extended throughout India and we can not imagine South Kōsala out of that area. Maurya bricks have been found at Malhar and, during the excavation, N. B. P. pottery has been recovered from this area for the first time. So far, clear indications of N. B. P. pottery were not known from

the Chhattisgarh region. No other direct indications are available which may clearly prove the Mauryan sway over this land.

In the second century B. C. Kalinga was ruled over by Khāravela. He not only inveded north India but also went towards west. The borders of South Kosala touch the Kalinga area towards its west. So, during his campains in the west, he must have annexed parts of South Kosala to his territory.

After the downfall of the Mauryas the Sātvāhanas rose in the political horizon of India. South Kosala witnessed the rule of Sātavāhanas for more than three hundred years. A coin of Āpīlaka, who was one of the earliest rulers of the Sātavāhana dynasty, was found in Balpur near Raigarh, From some inscriptions found at Malhar and some other sites of Chhattisgarh, it is evident that the reign was under the Sātavāhana rule.

The Sātavāhana Rule

From the excavations at Malhar it has come to light that planned city life was in existence during the time of the Sātavāhanas. The typical baked brick houses, pottery with stamp markings and cast coins have been found in this area. The Garhi area was used as a citadel. Brick-structures of the Sātavāhana period are found covered under the mounds.

Post-Sātavāhana Age

After the end of the Sātavāhana rule we know very little about the history of South Kosala. Efforts have been made by several scholars to reconstruct the history of South Kosala on the basis of the inscriptions, coins and other material. But the convincing results are still awaited. The dynasties which ruled over this area are as follows : Śarabhapuriyas, Soma or Pāṇḍuvaṁśīs, Nalas, Bāṇas and the Kalachuris.

The Śarabhapuriyas

Before the Kalachuris, the South Kosala was ruled over by two important dynasties, Śarabhapuriyas and Somavaṁśīs or Pāṇḍuvaṁśīs. These dynasties were ruling over the areas from the beginning of 4th cent. to almost the end of 7th cent. A. D. contemporary to the Imperial Guptas, Maukharis and Harshavardhana Their contribution in several spheres of life is great and the period can be called as the Golden Period of Chhattisgarh region. The brick-temple architecture and sculptural art reached its zenith, During this time five main art eenters were developed, viz. : (i) Malhar, (ii) Tālā, (iii) Kharod, (iv) Sirpur and (v) Rajim. At Malhar we get a continuous development of sculptural art right from the beginning of the second century B. C. to 13th cent. A. D. It has by far the largest and biggest habitational area so far found in Chhattisgarh region and the citedel is the most conspicuous in formation and best in deposits. This ancient town has yielded the largest number of copper plates, most of which belong to the Śarabhapurīya rulers.

The rule of the Śarabhapurīyas started almost at the same time when the Guptas rose to power in the Prayag-Magadha eara.

When Samudragupta attacked South Kosala about 360 A. D. the area was ruled over by king Mahendra. He was ruling at Malhar, which fact has been confirmed by the clay sealing bearing the legend, in the early Gupta Brāhmī charachters, '*Mahārāja Mahendrasya*'. This sealing has been recovered during last season in the excavation from the Gupta level It appears that king Mahendra belonged to the Śarabhapurīya dynasty and was probably the younger brother or the son of king Narendra, known from the inscriptional evidences. After Narendra a break is found in the Śarabhapurīya geneology, while the dynasty again rose to power during the time of Prasannamātra. A hoard of gold coins having the issues both of Prasannamātra aad Mahendrāditya, has been found. These rulers unlike the Vākāṭakas, the Parivrājakas and other dynasties of Central India, who were friends of the Guptas, issued their independent coins during 4th-5th centuries A. D. This also suggests that the rule of both Mahendra and Prasannamātra was very close to each other From this evidence it can be concluded that after king Narendra, the rule of Mahendra was started. But it was soon eclipsed by the attack of Samudragupta. Mahārāja Mahendra was defeated and was overthrown, That is why we get a break after king Narendra.

For fixing the dates of these rulers we have to accept the relationship of the Somavaṁśīs with the Maukhari dynasty as a landmark. It is known that Vāsaṭā Devi, mother of Mahāśivagupta Bālārjuna, was the daughter of Maukhari ruler Sūryavarmā. The date 570 A. D. for Sūryavārmā is already known. His contemporary ruler in South Kosala was Chandragupta, grand-father of Bālārjuna. He was succeeded by his son Harśagupta, who was followed by Mahāśivagupta Bālārjuna. Thus the date of Mahāśivagupta can be fixed in between c. 595 — 660 A. D.

Bālārjuna belonged to the Somavaṁsī dynasty, which was initially ruling in the Mekala janapada. Jayabala was the founder of that dynasty. He was followed by his son Vatsarāja. After Vatsarāja his son Nāgabala ascended the throne and he was succeeded by his son Bharatabala. His two copper-plates have been found, one from Dindori (Shahdol district) and the other from Malhar. The inscriptions mention that Bharatabala was the son-in-law of the king of South Kosala. The name of his queen is given as Lōkaprakāśā. From the available evidence it is surmised that Lōkaprakāśā was the daughter of Śarabhapurīya ruler Sudevarāja.

As Sudevarāja had no sons, his kingdom was divided into two parts. The upper part of the Mahānadī region, along with Malhar as its capital, was inherited by his son-in-law Bharatabala. The lower part of Mahānadī was occupied by Pravararāja II, the younger brother of Sudevarāja. He made Sirpur as his capital. Bharatabala was succeeded by his son Śūrabala. His copper plate has been found at Malhar.

It appears that Bharatabala had two sons, *Śūrabala* and Udayana. The South Kosala dynasty of Somavaṁsīs starts with Udayana, who is not designated as king. His son Indrabala got the name after his grand-father. Bharatabala is also known as Indrabala in his Dindori copper-plate.

It appears that Śūrabala was attacked by Pravararāja II, who issued his copper-plate from Malhar. But probably he was soon ousted from Malhar. In due course of time Sirpura was also captured by the Somavaṁśīs and the capital was shifted from Malhar to Sirpur. The date of Indrabala's ascent to the throne can be fixed about 500 A. D. Thus, the first Somavaṁśī dynasty ruled over South Kosala for about a century and a half.

The Śarabhapurīya dynasty started its rule over South Kosala in the beginning of the 4th century A. D. Śarabha was the first ruler of this dynasty. Some scholars have called him as the maternal grand-father of Goparāja, who faught against the Hūṇas as the commander-in-chief of the Guptas at Eran. He was killed and his wife became *satī*. But this Śarabha cannot be identified with the maternal grand father of Goparāja. Most probably he was Sudevarāja, whose last date coincides with the date of Goparāja, i.e. 510 A. D. Śarabharāja was followed by Narendra, who was probably succeeded by Mahendra. This Mahendra was attacked by Samudragupta and a gap in the dynasty came. Śarabharāja may be taken as the king of Śarabhapura (not equated with the first ruler of the dynasty).

Again, the rule of the Śarabhapurīya dynasty was re-established by Prasannamātra, whose relationship with Mahendra or Narendra is unknown.

After Prasannamātra came Jayarāja; then Mānamātra, Pravararāja I. Sudevarāja and lastly Pravararāja II, who shifted his kingdom from Śarabhapura (Malhar) to Sirpur It appears that the area to the north of Mahānadī was inherited by Bharatabala, the son-in-law of Sudevarāja, while the territory of south of Mahānadī was given to Pravararāja II. Pravararāja II was the last powerful ruler of this dynasty. The total rule of Śarabhapurīya dynasty lasted for about 200 years.

The rule of the Sātavāhana dynasty ended near about 225 A. D. Taking the advantage of absence of a paramount ruler in South Kosala the Śarabhapurīya rulers rose to power in the same way as was done by the Guptas in the north and the Vākāṭakas in Vidarbha area.

The Sarabhapurīya dynasty's contribution in the field of art and architecture was really note-worthy. The flat roofed temples at Tālā, Deura and one more ruined temple at Malhar, the Śabarī brick-temple at Kharod and the Adabhāra temples were definitely constructed during the time of the śarabhapurīya rulers. The brick temple at Kharod, known as Andaladeva can very well be assigned to the time of Indrabala. This temple is without any *maṅḍapa* or *ardhamaṅḍapa*. It can be placed in between the two distinctive styles of temple architecture.

Later minor dynasties

The rule of other minor dynasties, like the Nalas, the Sūras or Rishikulatulyas, the Sōmas, the Nāgas and the later Sōmavaṁsīs is not clearly known. The rule of the Nalas and the Nāgas was extended towards the Bastar region and the Sūras or Rishikulatulyas were ruling in the Mekala region. They were succeeded there by the Somavaṁśīs.

mśīs. The later Somavaṁśīs for a short time shifted towards Orissa after Mahāśivagupta Bālārjuna. Later on they again extended their sway over South Kosala region in the lower Mahānadī valley, while in its upper part the Bāṇa dynasty became powerful.

The first wave of the Kalachuris annexed the territory of these Bāṇa rulers in the 9th century. Again in the 10th century they re-established their empire in the South Kosala region.

After the lapse of one century, about 1000 A. D., the son of Kokalladeva of Tripurī, known as Kaliṅgarāja, established his branch at *Tummāṇa*. His grandson Ratnarāja I shifted his kingdom to Ratanpur in about 1050 A. D. Since then the Chhattisgarh branch of the Kalachuris ruled over this area upto the late Medieval period. In 1457 A. D. the Kalachuri empire was divided into two parts. Again Mahānadī became the boundary of both these branches. The second Kalachuri branch established itself at Khalari in Raipur district.

In 1742 A. D., when Raghunātha Singh, a descendant of the Kalachuris, was on the throne, Marāṭhā general Bhāskarapant invaded Ratanpur and captured it. Thus the Kalachuri rule ended in the Chhattisgarh region, and the Maratha rule began in the area. The British occupied the region in the year 1804.

EXCAVATION

The excavations at Malhar have been taken up by the University of Sagar with the main purpose of piecing together the past history of South Kosala, now known as Chhattisgarh. Several dynasties ruled over this land, one after the other. The available data, in the form of epigraphs, monuments, sculptures and other antiquities, is not sufficient to enable us to give a coherent chronological account of the region. Much more field work in the area is needed in this respect. Malhar, being one of the few prominent sites in Chhattisgarh, has been selected for an extensive work. Similarly, the ancient capitals of this region, known as Śarabhapura, Prasannapura and Yayātinagara are still to be satisfactorily identified. It is expected that further excavation will help in solving some of these problems.

The excavation work conducted during the last three seasons has revealed the following *five* cultural periods :

Period I : Protohistoric (c. 1000 B. C. to c. 350 B. c.)
period II : Maurya, Śuṅga, Sātavāhana (c. 350 B. C. to 300 A. D.)
Period III : Śarabhapurīyas and Somavaṁśīs (c. 300 to 650 A. D.
Period IV : Later Somavaṁśīs (c. 650 to 900 A. D.)
Period V : Kalachuris (c. 900 to 1300 A. D.)

The present classification has been made keeping in view the main dynasties which ruled over this area.

Period I (Proto-historic)

During the proto-historic period, the Chhattisgarh region was inhabited by the

Chalcolithic people. A piece of painted black-and-red pottery was collected from Kharod (dist. Bilaspur). A large number of sherds of red ware, connected with the early Iron Age, has been found at Malhar. Some of the sherds bear the graffitti marks on them. This type of pottery indicates the characteristic features of the Megalithic culture. An extensive area of Megaliths has been discovered in Chhattisgarh, particularly in the Durg district. At Malhar no megalith has been found, but the existence of the contemporary culture at this important early town cannot be ruled out.

Other pottery associated with this period is mostly red. Some of the pieces have black paintings on the red surface. A new feature has also been observed here. Instead of painting the black surface of the black-and-red ware, the red surface has been used for drawing horizontal bands in black. Very few sherds of this pottery have been unearthed. The pottery usually has the grey ware, black burnished ware and coarse red ware.

At the lower stratum of this period three floor levels were encountered. They were found mixed with *bajari*. Due to filling up of water in the trench, the lowermost part could not be excavated. In the upper levels of this period a wall made of baked bricks was found. The northern side of the wall has much filling. The purpose of the wall and the mud-filling could not be determined.

Period II (c. 350 B.C. to 300 A.D.)

During the period a marked change took place in the whole of Chhattisgarh. Construction of mud rampart forts around capitals and other important habitations became a regular feature now. Remains of one such extensive fort have been found at Malhar.

The pottery, representing this period, includes bowls and dishes of black-and-red ware, incurved bowls, storage jars, N. B. P. ware (only two pieces were discovered), red slipped ware and stamped pottery. The usual Maurya and Sātavāhana bricks have also been found.

A few houses made of undressed stones and bricks have been unearthed. The floors were made of hard clay mixed with *bajari and dung*. At the upper levels of this period a floor of yellow clay has been encountered. A twin hearth and storage jar was also found on the floor level.

The layers of this period yielded punch-marked and cast coins and several Sātavāhana coins with the elephant symbol. An important sealing of baked clay bearing Brāhmī legend '*Gāmasakosaliyā* (of the village Kosalī) was obtained from the dig. A clay sealing bearing the Brāhmī inscription 'Vedasirisa' (of Vedasrī') was obtained from the fort area.

Period III (C. 300 to 650 A. D.)

The period corresponds to the Gupta period of northern India. During this period temples of unusual importance were constructed at Tālā, Kharod, Malhar, Adbhar, Sirpur and Rajim. Stone and brick were used in their construction.

The excavated trenches, except no. 1, yielded various objects. The pottery of the

period represents red polished, red slipped, black-and-red and coarse red wares. Some Buddhist pots, bearing the name 'Dharmakaraka' on red polished, red-slipped and Kaolin pottery were also found.

A rim piece of some big jar bears Gupta Brāhmī script, which reads 'Mahāswāmī' (great lord). A baked pendant was found with the Brāhmī inscription 'Kalyāṇārchī'. From Malhar-4 Ext. a rare clay sealing was recovered which bears the inscription '*Mahārāja Mahendrasya*' in Gupta Brahmi characters. On this evidence it can be said that the sealing belongs to king Mahendra, mentioned in the Allahabad pillar inscription of Samudragupta.

Massive construction work took place during this period at Malhar. Several temples of the Śaiva - Śākta cults were constructed at Malhar. In tench no. 2 were found the relics of a Śaiva temple. Trenches no. 4 and 6 yielded a Buddhist temple and chaitya. A huge tank, now known as *Potnār*, which at present covers an area of about 60 acres, was also constructed during this period.

The Buddhist temple found at MLR-4 has great importance. This shrine belongs to the Vajrayāna sect of Buddhism. In the centre of the temple there was a platform of bricks. Image of god *Hevajra* was installed on the platform. The southern side was closed with a wall. On all the three sides of the platform there was a *pradakshiṇāpatha*. Small rooms were also made on three sides. These were the residential rooms for the monks of the vihāra. The structure has a massive stone plinth and brick walls. This structure was found connected with a rammed floor.

Another Buddhist shrine was excavated in trench no. 6. This trench was laid towards the northern side of Malhar close to village Jaitpura. The structure indicated that it was that of a *chaitya* and belonged to the *Vajrayāna* sect of Buddhism. It was rebuilt at a later date. The debris found scattered close to the chaitya hall indicated this. Local stone was used for construction. The chaitya hall has its entrance towards the east. Close to the entrance there were two platforms, one on each side. Towards the north there was another entrance or exist door. In front of this opening. stood a Buddhist *stūpa*. It was later destroyed along with the main building. The chaitya hall has yielded a hard rammed floor of more than .60 meter thickness. The western end of the chaitya was semi-circular in shape. In the centre there was a mud-platform on which the image of a Vajrayānī deity was placed. The image is now preserved at Malhar. Towards the southern side of the chaitya traces of vihāras have been found. Two small brick-pits were also unearthed from this trench. The exact use of these pits could not be determined. Probably they were used for keeping ashes.

Period IV (c. 650 to 900 A. D.)

Before the end of period III, the capital had been shifted from Malhar to Sirpur. The importance of the town naturally began to decline. The main habitational area started shifting towards the south.

A new type of ceremic was introduced in this period. The pottery excavated in the dig has stamp-marking and a golden slip, It seems that the golden sand

found near Balpur was used for preparing the slip. Other pottery has red colour and mica slip.

Iron objects (nails, arrow-heads), beads of stone, glass and terracotta, and baked clay sealings, bearing the Buddhist creed, were found in the levels of this period. A few sculptural and decorated pieces were also recovered from this level.

Period V (c. 900 to 1300 A. D.)

During this period the habitation again shifted towards the inner part of the present town. Hence the remains of the later periods have not been recovered from the outer mounds.

In this Age people used the stones and bricks of period IV for constructing their buildings. A brick structure of 18 courses, with its floor made of rammed clay and stone, deserves special mention.

The period yielded plain and coarse red were pottery.

After the Kalachuris the town of Mallālapattana lost its importance. About .90 m. thick deposit at the top of the relevant level did not yield any finds of importance.

Exploration

A detailed exploration of the Bilaspur district was conducted this year by the archaeology team of the Sagar University. Four tahsils—Bilaspur, Kataghora, Janjgir and Shakti–were covered.

Mud Forts

During the course of exploration, 36 mud rampart forts were brought to light for the first time. The list of these forts as finalized by us (Prof. K. D. Bajpai and Dr. S. K. Pandey) is as follows :

(1) Malhar, (2) Konar, (3) Kotmi-Sonar, (4) Kotagarh, (5) Khatola, (6) Bachhod, (7) Kotatara, (8) Marro. (9) Pamgarh, (10) Kharod, (11) Dhurkot. (12) Anwarid, (13) Madangarh, (14) Kosala, (15) Sarhar, (16) Senudh, (17) Nawagarh, (18) Bhainsda, (19) Salakhan, (20) Dhardehi, (21) Akaltara, (22) Kotmi, (23) Baghaut, (24) Chhapora, (25) Singhara, (26) Dabhara, (27) Telikot, (28) Pota, (29) Kashigarh, (30) Dhruvakot (Kotmi), (31) Adhabhar, (32) Bargarh, (33) Sapcsa, (34) Pendarawa, (35) Mandwa, (36) Baradwar.

These mud-rampart forts have a double defence system with two ditches, one outside the rampart and the other inside, The habitation was restricted inside the internal ditch. It seems very probable that these forts gave the present name Chhattisgarh to this region. These forts formed the integral basis for a peculiar kind of political system, which existed a little prior to the Maurya period.

Temple Architecture

During the survey, a study of temple architecture was also made. It was observed that in the Chhattisgarh region three types of temples were constructed. They were as follows :

(i) Stone temples, (ii) Brick temples, (iii) Mixed variety (combination of stone and bricks).

The temples falling under type (i) are located at Malhar, Adhabhar, Ratanpur, Pali, Tumman, Janjgir and Seorinarayan. In the second type fall the temples of Kharod, Seorinarayan, Palari, Sirpur, Rajim, etc. Of the third type only one site, viz. Tala is known, where two temples have been found.

Tālā temples

On the Bilaspur-Raipur road, 20 kms. south of Bilaspur on the bank of river Manihari, have been discovered two dilapidated temples. They are locally known as Devrani and Jethani temples. The Jethani temple is almost ruined. The Devrani temple is still half preserved. The plinth and walls door-jamb and the front pillars are still intact. The upper śikhara part, which was constructed of bricks, has now fallen down. The brick-bats are lying scattered around the temple.

The colossal nature of the stone sculptures lying around the ruined Jethani temple suggests that this temple was originally quite grand. Some of the sculptures have a height of 4 m. to 5 m. The images of Narsimha, Buddha and a few other deities have been identified. The temple may have been a Daśāvatāra, shrine. In point of time this temple is earlier than the Devrani temple. It can be assigned to the 4th century A. D.

The sculptural art of the second temple, Devrani, is remarkably superb. It excells all other plastic art in the entire Chhattisgarh area. The temple belongs to the Śaiva cult. In one sculpture on the door-jamb god Śiva is shown standing in the *kirātaveśa*. Several other panels are also tastefully carved on the door-jambs. The carving of *kīrtimukha* and the foliage (pattrāvalī) motif on the side pillars is exquisite. The broken head of Śiva and bust of Pārvatī are kept inside the *garbhagriha*. On the basis of art-style this temple can be assigned to the close of the 4th century A. D. or the first quarter of the 5th century A. D.

Coins—A circular copper coin of Kushana monarch. *Vima Kadphises* was picked up at village Kosala (dist. Bilaspur)

Inscriptions—Besides the inscriptions found at Malhar area one inscription incised on a rock-cut cave, known as Sitamarhi in Korba town, was noticed. The inscription bears the name of *Aśṭadwāra viṣaya*. The old name of Adhabhar was Aśṭadwāra. This inscription has indicated that the northernmost boundary of Aśṭadwāra viṣaya was extended upto the river Hasdo.

Plate I — फलक १
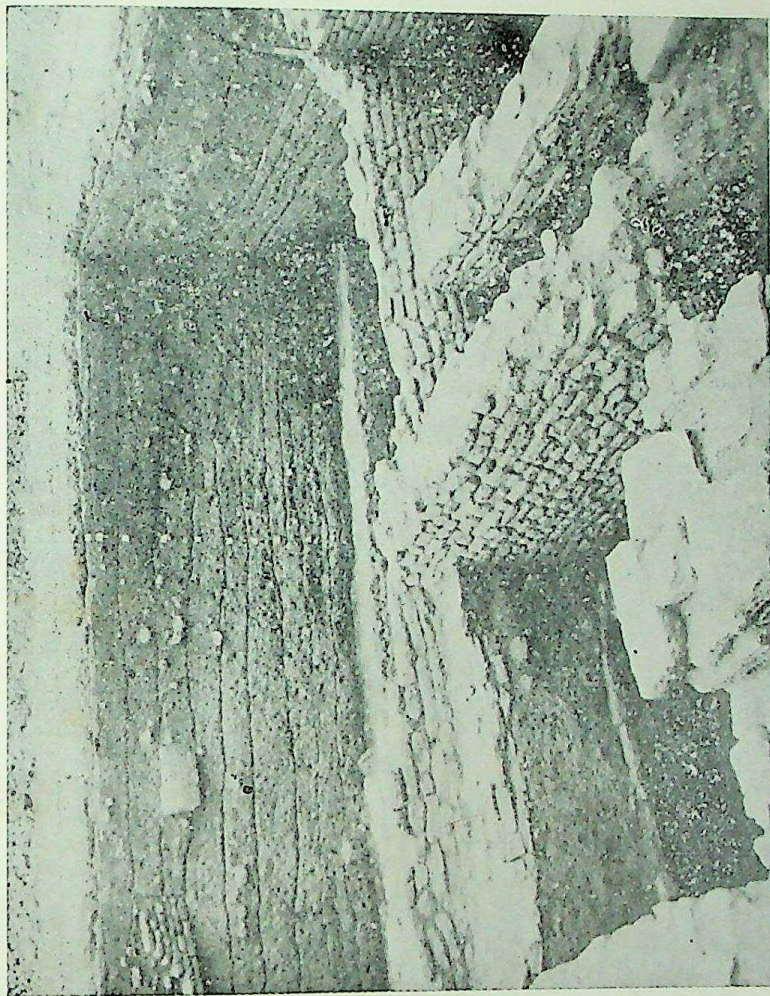
पक्की ईंटों के कमरे — Brick - structures of rooms

पकी ईटों से कूटकर बनाया गया फर्श, जिसके मध्य में चूल्हा है। बायीं ओर खोद कर गढ़ा बनाया गया है ।

Rammed floor and hearth in the centre. A pit is cut in the floor to the left.
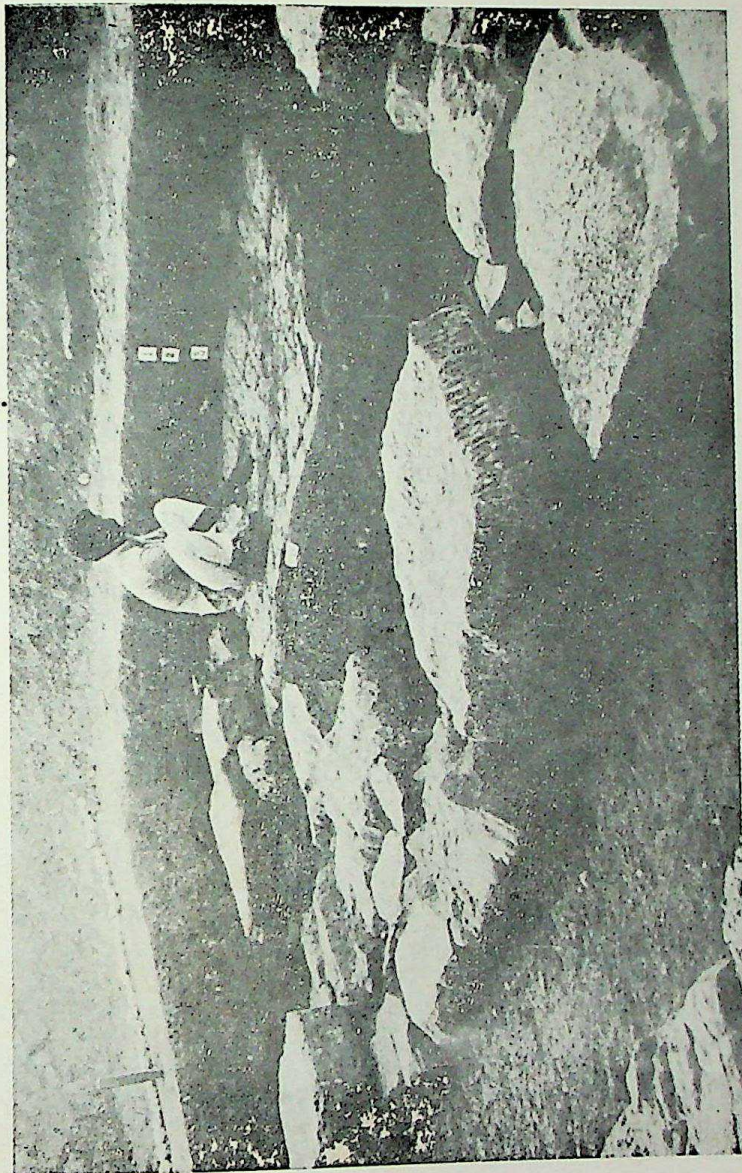
स्थानीय पत्थरों से निर्मित बौद्ध मन्दिर। मध्य में पकी ईटों से निर्मित चबूतरे पर बौद्ध देवता 'हेवज्र' की प्रतिमा स्थापित थी।

Basement of a Buddhist temple made of local stones. On the back is the brick platform of the cella in which the image of Buddhist deity 'Hevajra' was enshrined; 7th cent. A. D.
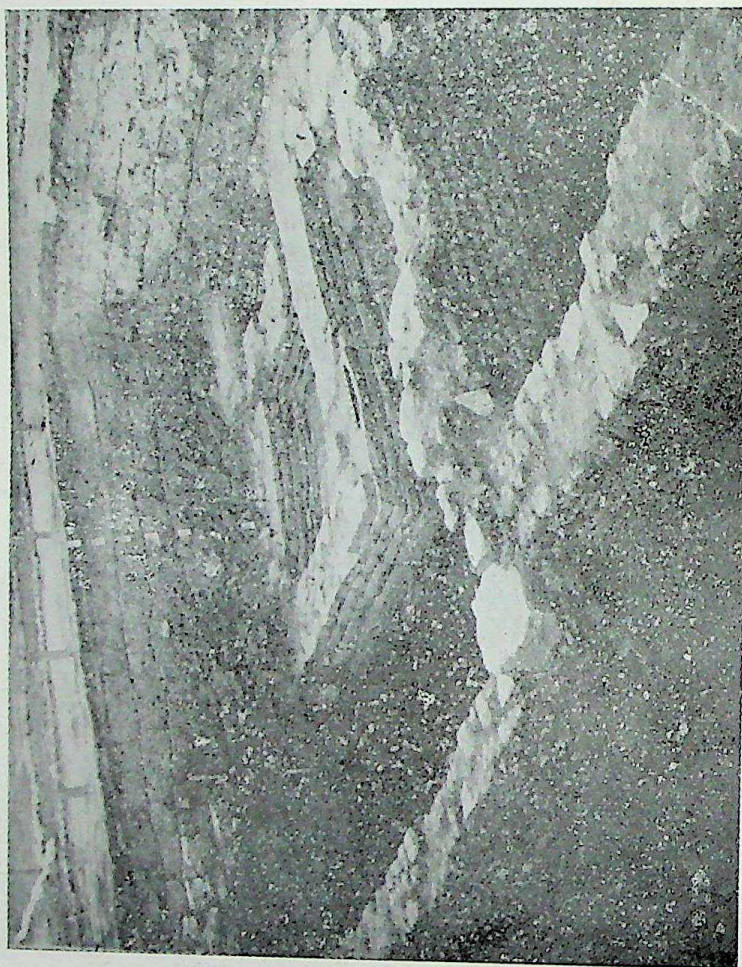
कलचुरिकालीन सुगढ़ भवनों के अवशेष

Remains of well-built houses of the Kalachuri period.
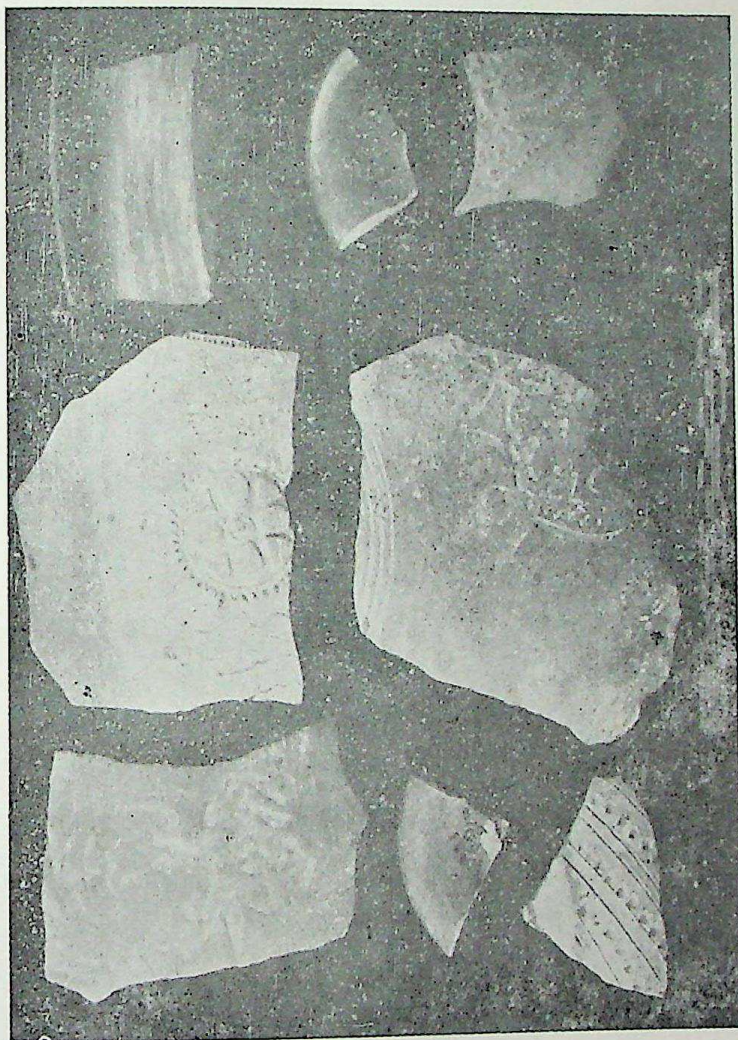
मल्हार से प्राप्त अलंकृत मृण्पात्र　　　　De.orated pottery frcm Malhar

मल्हार उत्खनन से प्राप्त काले तथा लाल रंग का समूचा कटोरा तथा अन्य लघ मृद्भाण्ड।
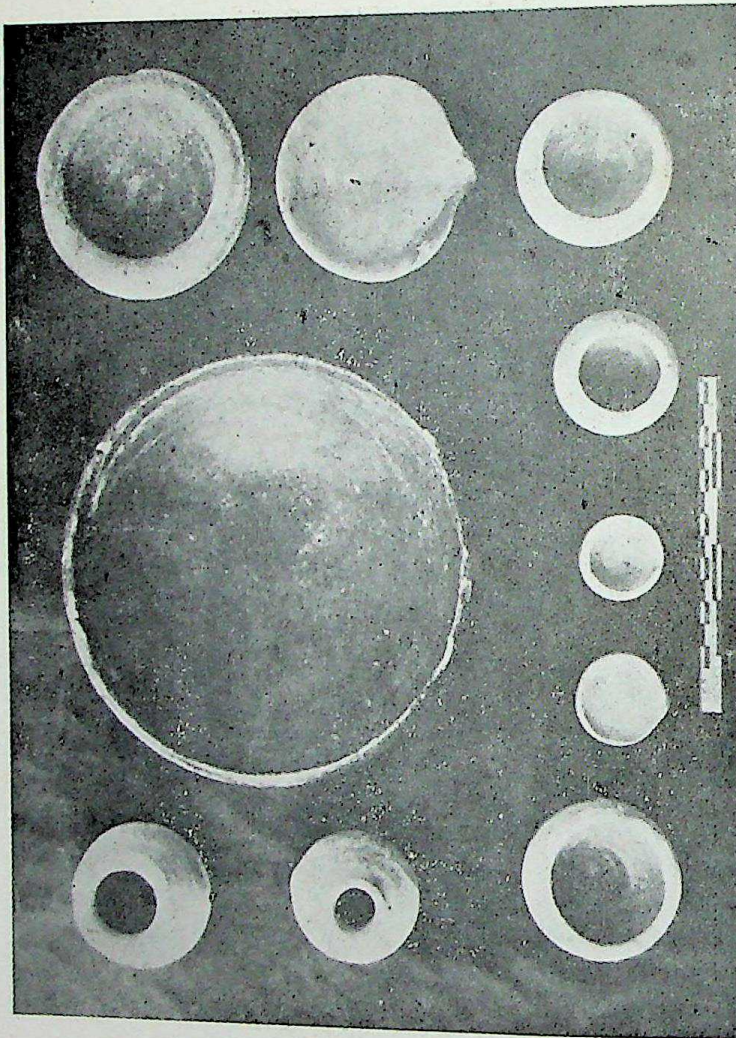
Pottery from Malhar. In the centre is a complete large dish of black-and-red ware. On the sides and bottom are shown miniature vessels excavated from the site.

(क) प्रस्तर निर्मित मानवाकार नंदी, (ख) पत्थर का चौकोर टुकड़ा जिस पर घट, कमल-कली, पंखुड़ियाँ तथा हिरण अंकित हैं, (ग) गणेश की लघु प्रस्तर–प्रतिमा, (घ) गुप्तकालीन ब्राह्मीलिपि मे 'हालस्वामि' लेख लिखा हुआ नाँद का टुकड़ा, (ङ) बच्चे का सिर (च) पकी मिट्टी का घड़ जो अनेक आभूषण पहने है।

Finds from Malhar

(a) Nandī with folded hands;
(b) Square stone tablet bearing vase, lotus-bud and flowers and an antelope.
(c) Miniature stone image of Gaṇeśa
(d) Piece of a big inscribed earthenjan bearing the name 'Halaswami' in Gupta Brāhmī
(e) Terracotta malehead;
(f) Torso wearing ornaments.

Plate VIII

फलक ८

पांडु शासकों का ताम्रलेख जिस पर भरतबल के समय तक की वंशावली दी है। (बूढ़ीखार, मल्हार से प्राप्त)

Copper plate inscription from Būrī Khhār (Malbar). It gives the geneology of the Pāṇḍava rules upto Bharatabala.

Plate IX

फलक ९
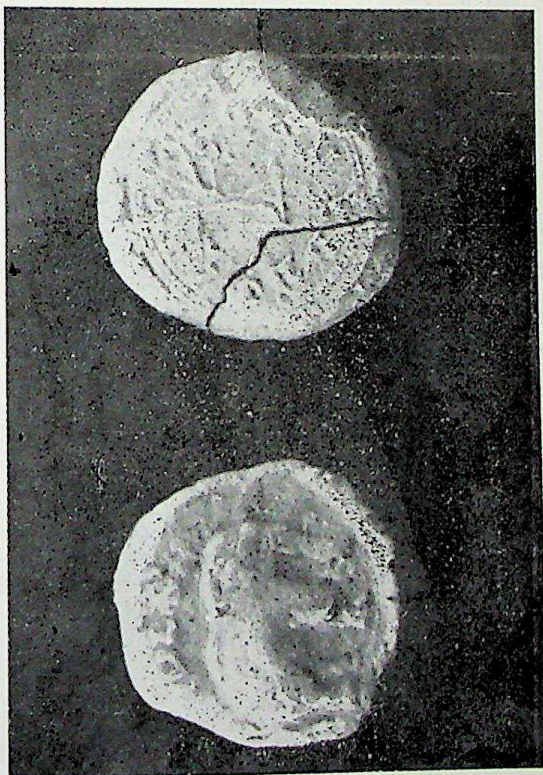
(क) पकी मिट्टी की मुहर जिस पर ब्राह्मी लिपि में 'वेदसिरिस' (वेदश्री) लिखा है। मध्य में सातवाहन राज–चिह्न हाथी का अंकन है।

(ख) पकी मिट्टी की मुहर जिसपर ब्राह्मी लिपि में 'गामस कोसलीया' (कोसलीय ग्राम का) लिखा है। मध्य भाग में कल्पवृक्ष का अंकन है। समय ई० दूसरी शती।

(ग) पकी मिट्टी की मुहर जिसपर 'महाराज महेन्द्रस्य' लेख है। समय ई० चौथी शती।

(घ) पकी मिट्टी की अंडाकार मुहर जिसपर तीन स्थानों में 'श्री कल्याणार्चि' लिखा है। समय ई० सातवीं शती।
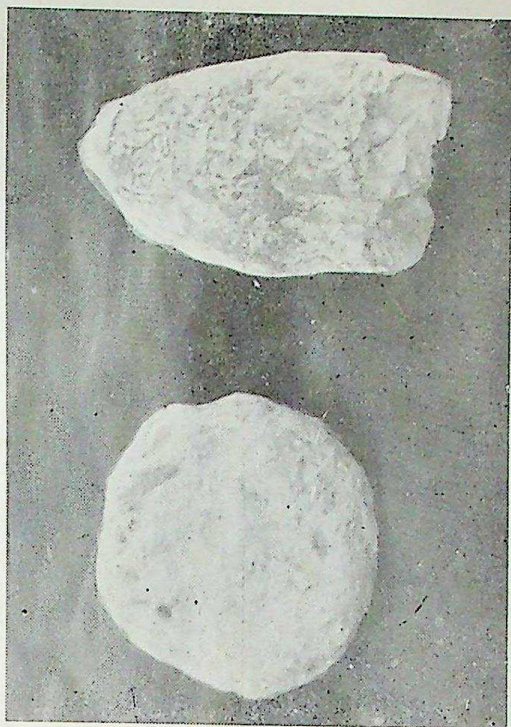
(a) Inscribed clay sealing bearing the legend 'Vedasirisa' (of Vedaśrī). In the centre is the depiction of Sātavāhana emblem elephant. 2nd century A. D.

(b) Clay sealing bearing in Brāhmī script 'Gāmasa Kosalīyā' (of village Kosalā); 2nd cent. A. D.

(c) Clay sealing having an inseription 'Mahārāja Mahendrasya' in Gupta Brāhmī; 4 th cent. A. D.

(d) An ovel clay sealing inscribed at three places bearing the legend 'Kalyāṇārchi'; 7th cent. A. D.

अभिलिखित चतुर्भज विष्णु-प्रतिमा। हाथों में शंख, चक्र, गदा, और असि हैं। ई० पू० दूसरी शती।

Inscribed **four-armed** Viṣṇu, **holding conch, wheel mace and sword; 2nd cent. B. C.**

(क) विविध आभूषण धारण किये हुए शिव-प्रतिमा का ऊपरी भाग। भाल के मध्य में तृतीय नेत्र है। मूर्ति चारों ओर से कोर कर बनायी गयी है। ई० चौथी शती।

(ख) अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा की आवक्ष मूर्ति। ई० तीसरी शती।
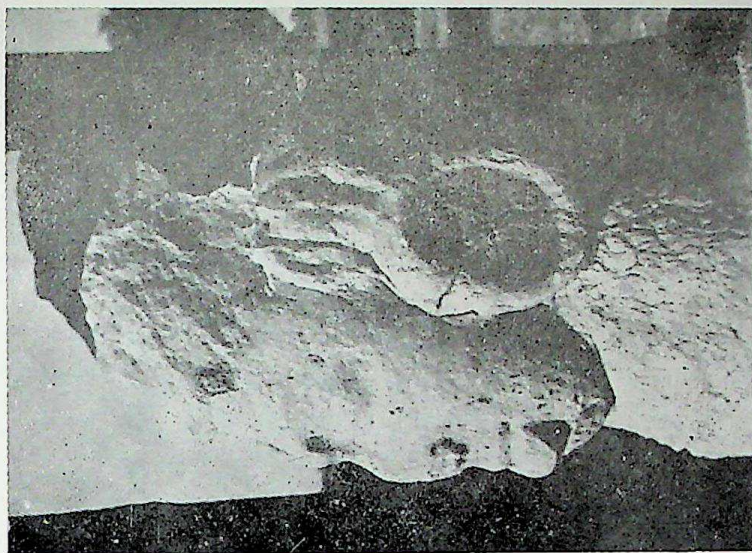
(a) Upper part of Śiva image wearing various ornaments. The third eye is shown in the centre of the forehead. The image is carved in the round; 4th cent. A. D.

(b) Bust of the image of Ardhanārīśvara; 3rd cent. A. D.
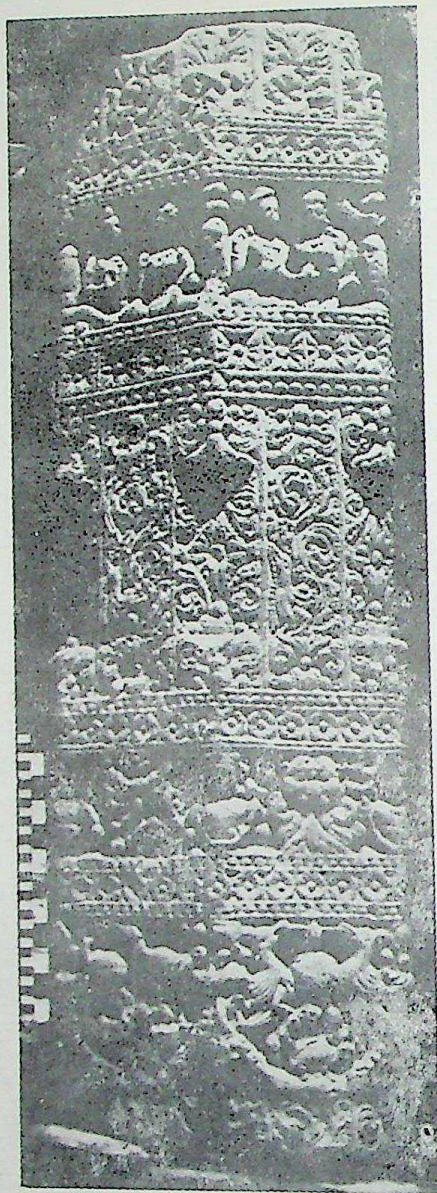
(क) अलंकृत स्तम्भ जिस पर विविध जातक-कथाओं का अंकन है। ई० पाँचवीं शती।

(ख) अलंकृत स्तम्भ जिसपर लताओं आदि का मनोरम चित्रण है। ई० पाँचवीं शती।
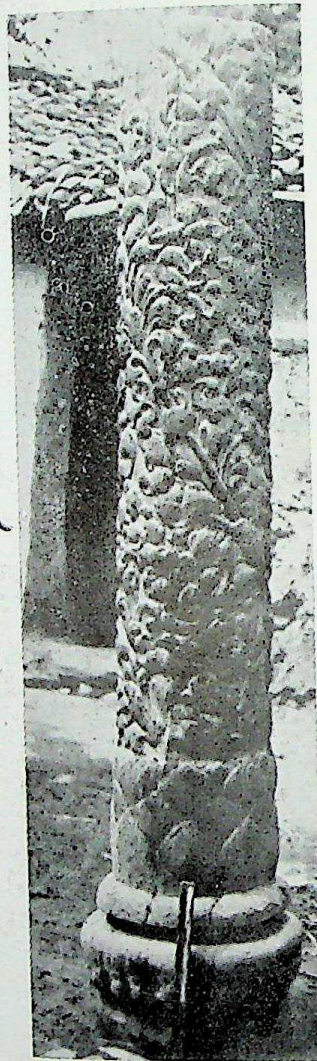
(a) Ornamental pillar bearing graceful carving. At the bottom are depicted two Jātaka tales: (i) of the owl being coronated; (ii) of the Tortoise being flown by two birds; 5th cent. A. D.

(b) Pillar tastefully carved with full vase, lotus-petals and creepers; 5th cent. A.D.

(a)

(b)
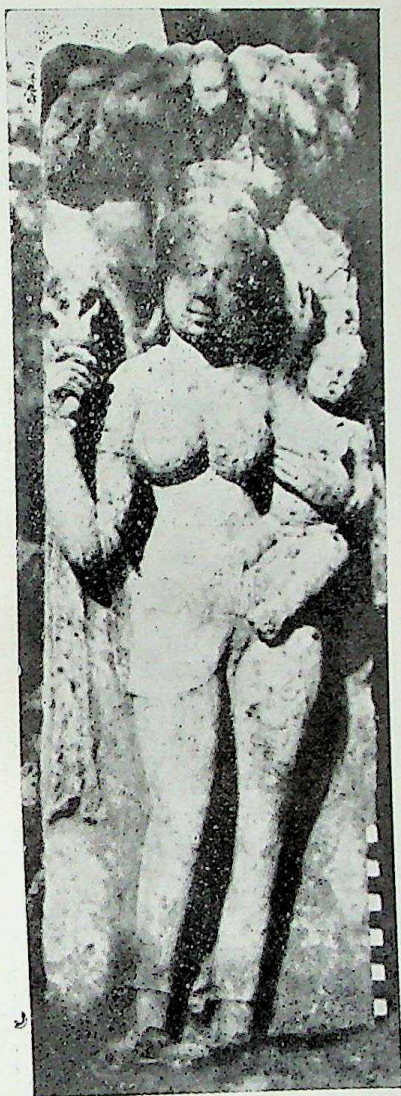
(क) स्कंद को गोद में लिए हुए पार्वती। उनके दायें हाथ में कमल है। देवी फुलकारी वाली साड़ी तथा अनेक आभूषण पहने है। वह पुष्पित अशोक वृक्ष के नीचे आर्कषक मुद्रा में खड़ी है ई० छठी शती का आरंभ

(ख) द्वारस्तंभ (उँचाई ३.३५ मीटर) जिसपर कीर्तिमुख तथा लतावल्लरी का मनोरम अंकन है। ई० छठी शती का आरंभ।
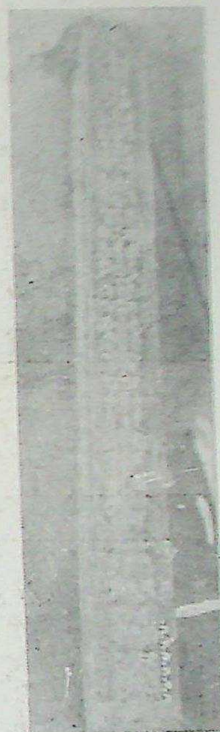
(a) Pārvatī holding child Skanda in her lap. In her raised right hand she holds a lotus. She wears embroidered sāri and other ornaments. She is standing under a flowering Asoka tree; Early 6th cent. A. D.

(b) Doorjamb (ht. 3.35 m.) bearing decoration of Kīrtimukhe and foliage; early 6th cent. A. D.

(a)

(b)
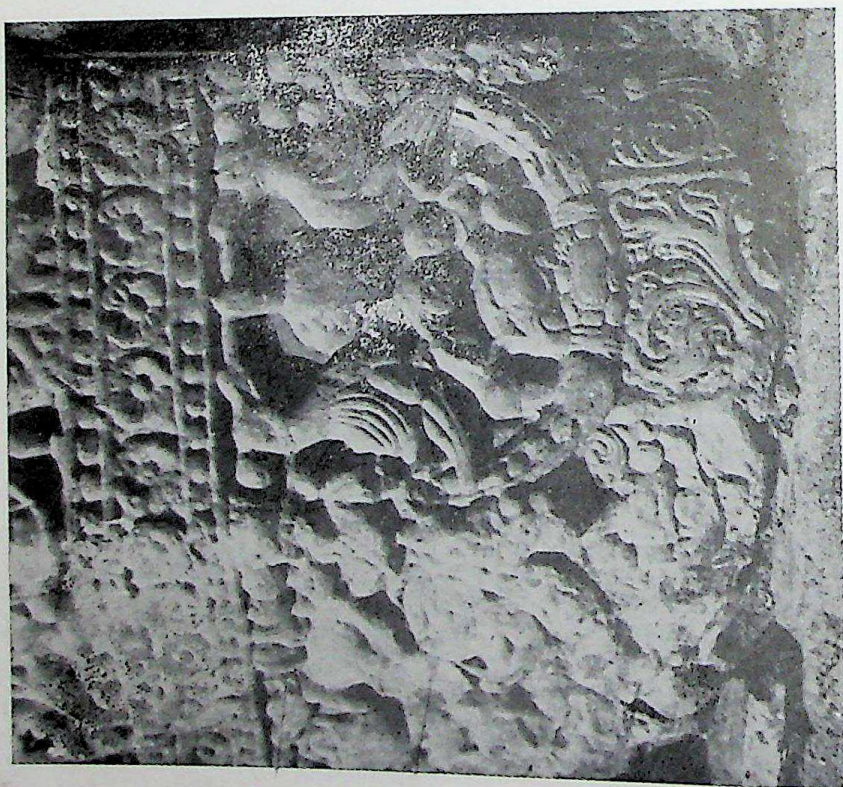
(क) अलंकृत स्तंभ का भाग जिसपर कच्छप जातक तथा उलूक जातक कथाओं का अंकन है। लगभग ५०० ई०।

(ख) देउल मन्दिर में प्राप्त द्वारस्तंभ जिस में द्विशिरा चार मानव आकृतियां अंकित है। लगभग ५०० ई० हैं।
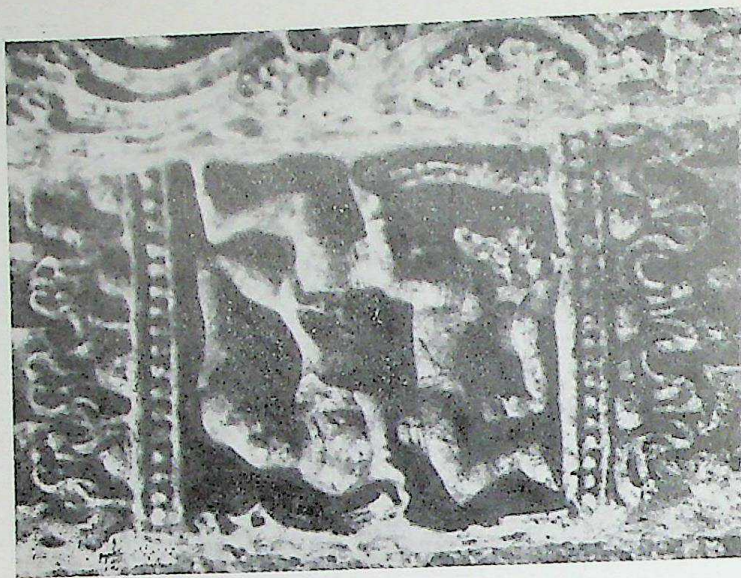
(a) Part of a decorative pillar showing, along with other ornamentation, the depiction of the *Kacchapa* and *Ulūka* Jātakas. c. 500 **A. D.**

(b) Doorjamb from Deul Mandir. Four human figures with a combined double-head are shown in the centre; c. 500 A. D.

मानव आकृतियां अंकित है । लगभग ५०० ई० हैं ।   centre; c. 500 A. D.

Plate XV

फलक १५
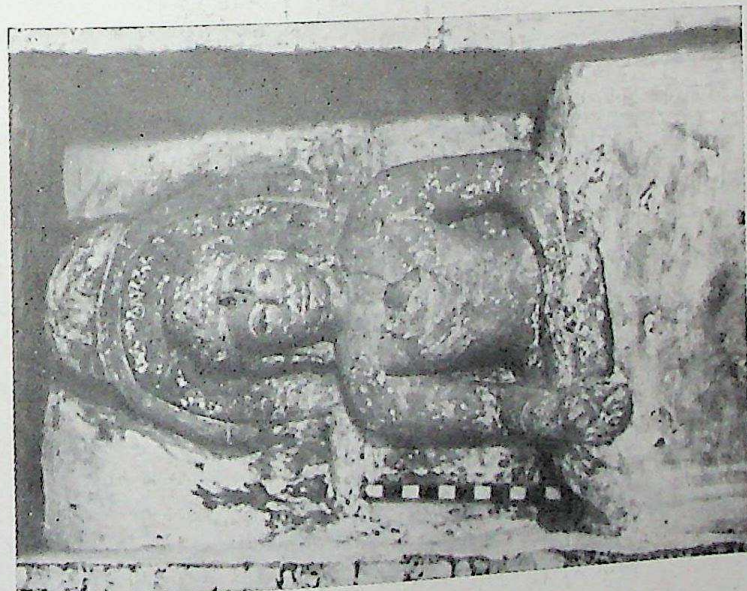
(a)

(क) भूमि–स्पर्श मुद्रा में आसीन बुद्ध । ई० ९ वीं शती ।

(ख) पद्मासन पर आसीन बोधिसत्त्व; ऊपर ध्यानी बुद्ध प्रतिमाएँ तथा दोनों किनारों पर अन्य देव मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । ई० नवीं शती ।

(b)

(a) Buddha seated in *Bhūmisparśamudrā*. From Yaitpur 9th cent. A. D. (Malhar Museum)

(b) Bodhisattva seated in Padmāsana. Buddha figures are shown at the top and other dities are carved on the sides; 9th cent. A. D.

(a)

(b)

(क) बाएं हाथ में सनाल कमल लिए हुए तथा दायाँ हाथ वरदमुद्रा में प्रदर्शित करते हुए बौद्ध देव पद्मपाणि अवलोकितेश्वर। उनके मस्तक पर ध्यानी बुद्ध अमिताभ हैं और कोनों पर विभिन्न मुद्राओं में बुद्ध की लघु प्रतिमाएं हैं। समय ई० दसवीं शती।

(ब) बौद्ध देवता की सिरविहीन प्रतिमा। नीचे तीन स्त्रियों तथा दो पुरुषों की आकृतियाँ हैं। समय ई० आठवीं शती।
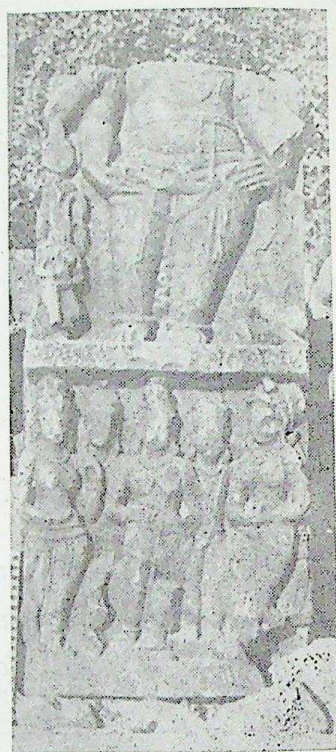
(a) Buddhist deity Avalokiteśvara holding a stalked lotus in his left hand. Dhyānī Buddha Amitābha is seen over the head. On the corners above, are shown seated Buddhas in various postures; 10th cent. A. D.

(b) Headless Buddhist deity. At bottom are seen three female and two male figures; 8th cent. A. D.

(a) Image of Hevajra, the Tāntric Buddhist deity. Obtained from Malhar (trench no. 4); 8th cent. A. D.

(b) Kubera, god of wealth, seated in easy posture. He holds a fruit in right hand and mongoose emitting ornaments in the left. The deity wears various ornaments and there is halo behind his head. 7th cent. A. D.

(b)

Plate XVII

(a)
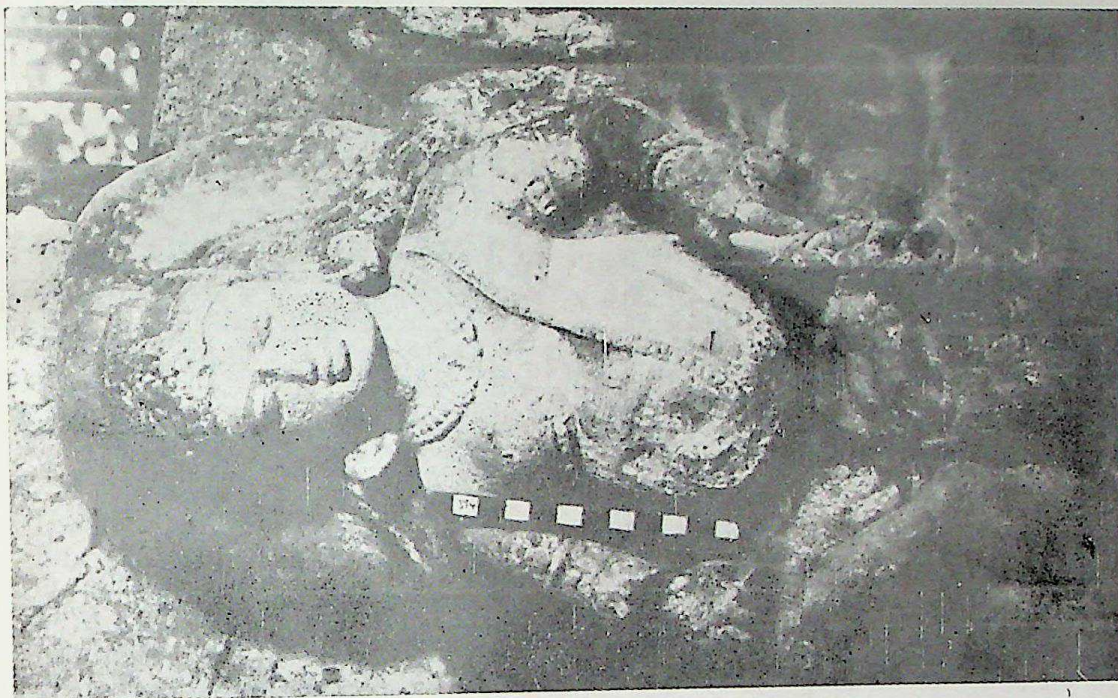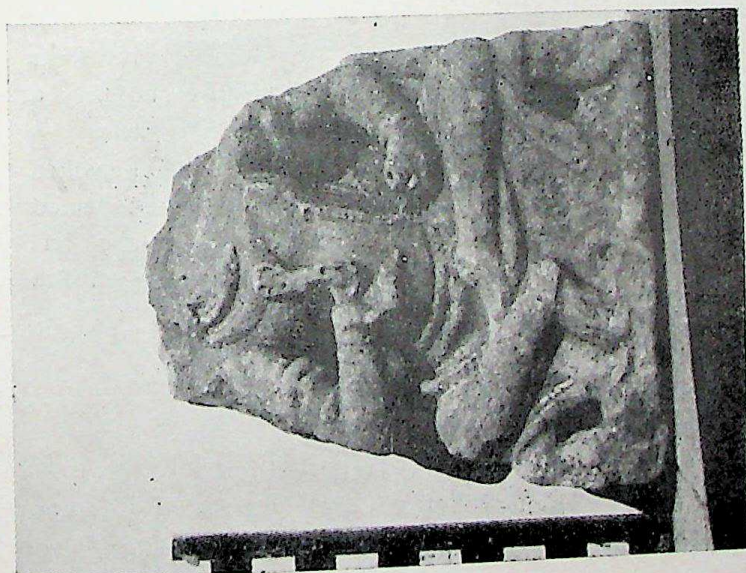
(क) खदान सं० ४ से प्राप्त बौद्ध देवता हेवज्र की प्रतिमा। ई० ८ वीं शती

(ख) ललितासन पर बैठे हुए धन–देवता कुबेर। उनके दायें हाथ में बीजपूरक तथा बायें में मुक्तामाल-सृजक नेवला है। कुबेर विविध आभूषण पहने हैं और उनके मस्तक के पीछे प्रभामंडल है। ई० सातवीं शती।

(क) दो परिचारिकाओं सहित, विश्राम मुद्रा में बैठे हुए धन-देवता कुबेर। उनके दाएं हाथ में पुष्प तथा बायें में धन की थैली है, ई० सातवीं शती।

(ख) बौद्ध देवी तारा की चतुर्भुजी प्रतिमा। उनके उपरले बायें हाथ में सनाल कमल है। पीछे प्रभामडल हैं। ऊपर के बायें कोने पर ध्यानी बुद्ध आसीन है। नीचे पूजक बना है। नवीं शती।
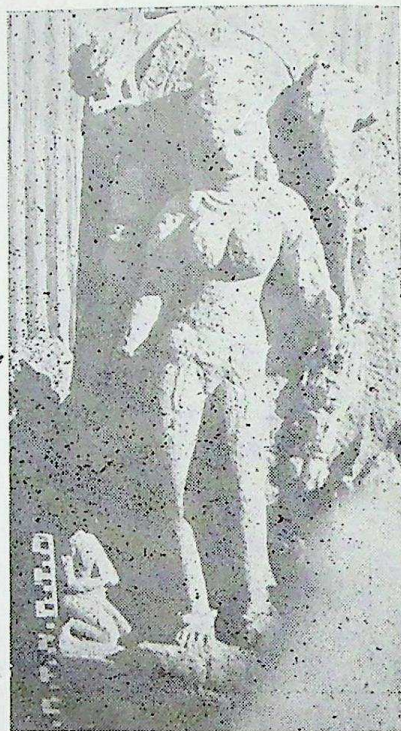
(a) Kubera with two female attendants seated in easy posture holding a flower and a purse.

(b) Buddhist deity Tārā holding a stalked lotus in her upper left hand. Seated dhyānī Buddha is seen at the left corner. Below is a worshipper. 9th cent. A. D.

(क) त्रिभग मुद्रा में खड़े हुए चतुर्भुजी कार्तिकेय। वे बघनख युक्त माला तथा अन्य आभूषण पहने हैं। उनके वाहन मयूर का सिर नीचे अवशिष्ट है। लगभग ६५० ई०।

(ख) द्वारस्तभ जिसपर खड़े हुए चतुर्भुज शिव प्रदर्शित हैं। उनके उपरले दायें हाथ में त्रिशूल है, निचला बायाँ हाथ गण का सहारा लिए हुए है। आठवीं शती।
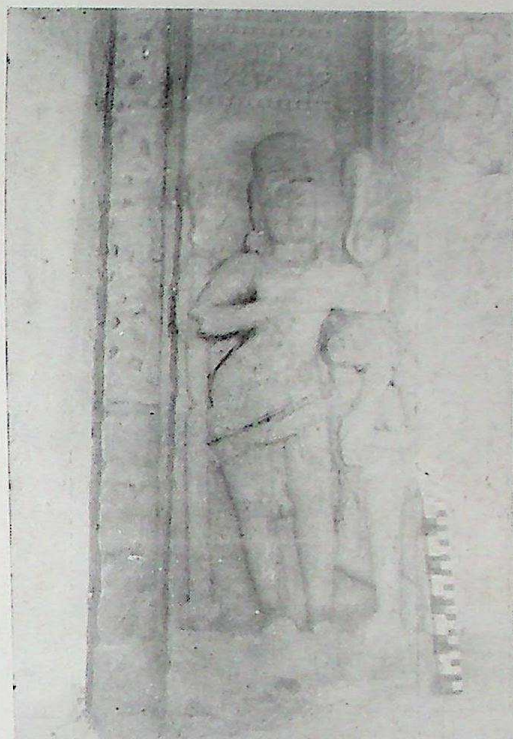
(a) Four-handed Kārttikeya standing in tribhaṅga. He wears his typical garland and other ornaments. Head of his vāhana peacock is seen under the lower right hand of the deity. About 650 A.D.

(b) Door-jamb showing the figure of four-handed Śiva. In his upper right hand the deity holds a triśūla. His lower left hand is placed on his gaṇa. 8th cent. A. D

Plate XX

(क) सज्जापट्टी जिसमें मानव आकृतियों की भारी माला धारण किये हुए दिखाया गया है। ई० सातवीं शती।

(ख) अंजलिमुद्रा में आकर्षक ढंग में बैठे हुए नाग-नागी की आकृतियाँ। ई० सातवीं शती।
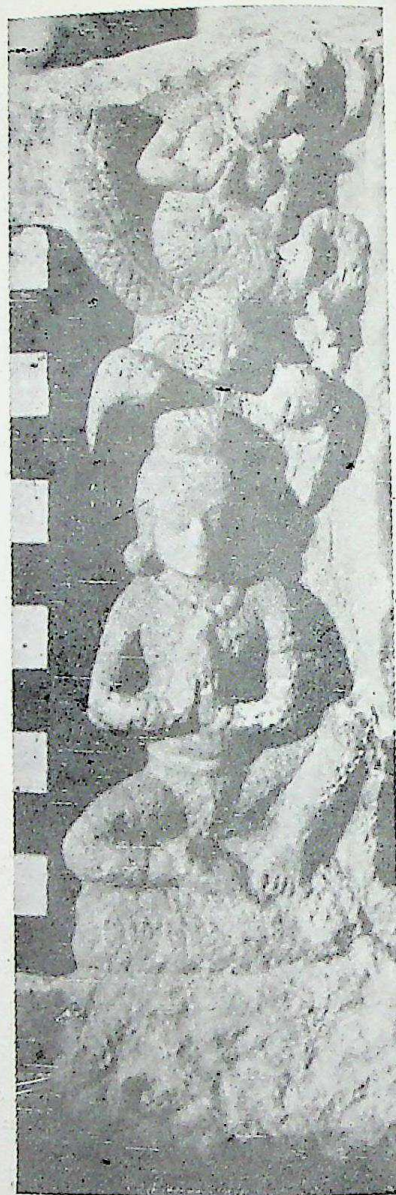
(a) Decorative frieze showing human figures holding a heavy garland. 7th cent. A.D.

(b) Part of a pillar showing the figures of a Nāga and Nāgī in the posture of adoration. 7th cent. A. D.

Plate XXI

(a) Standing figure of Sūrya, holding stalked lotuses in both hands. He is shown in the Udīchyaveśa.

(b) Architectural fragment. The top panel depicts a male figure and a crocodile emitting pearls. The lower panel shows madanikā and kīrtimukha motifs. 600 A. D.

फलक २१
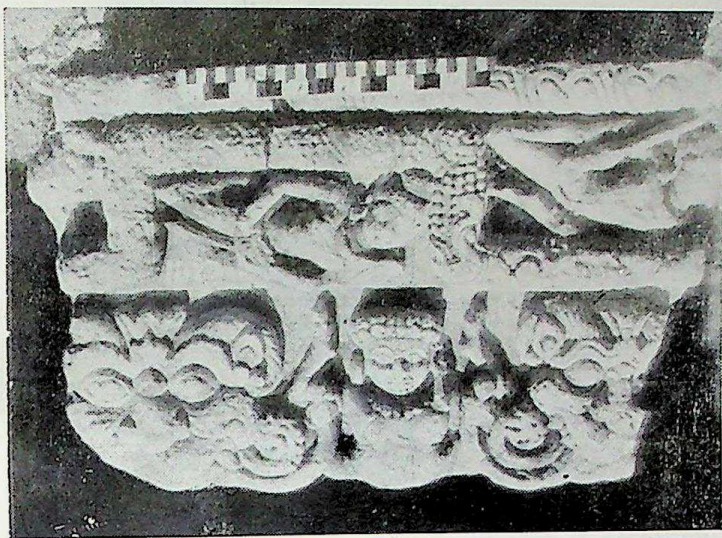
(क) दोनों हाथों में सनाल कमलधारी सूर्य की खड़ी हुई प्रतिमा, जिसे उदीच्य वेश में प्रदर्शित किया गया है। ई० दसवीं शती।

(ख) इमारती पत्थर का टुकड़ा। ऊपर के दिलहे में मानव आकृति तथा मुक्ता-विसर्जक मकरमुख अंकित है। नीचे मदनिका तथा कीर्तिमुख के चित्रण हैं। लगभग ६०० ई०।
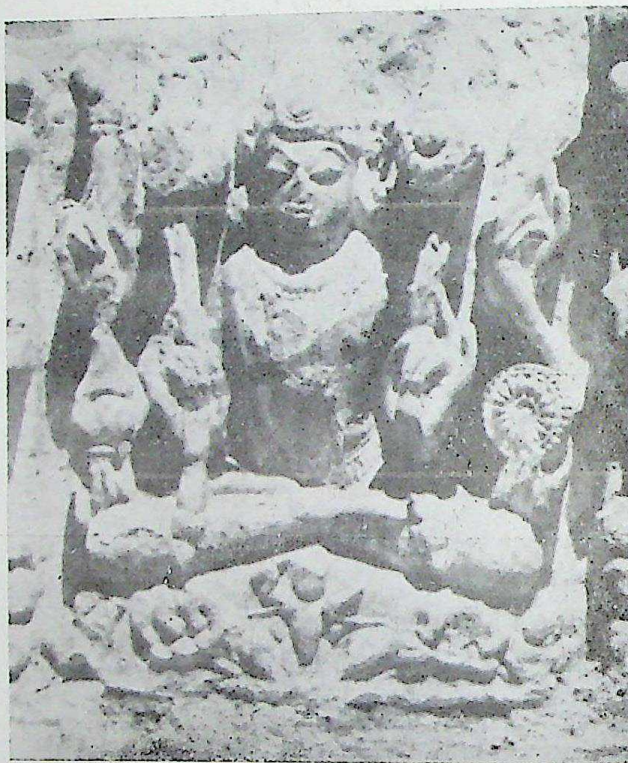
मल्हार से प्राप्त हरिहर-हिरण्यगर्भ की प्रतिमा; चरण चौकी पर सूर्य का सप्ताश्व रथ चलाता हुआ अरुण सारथी प्रदर्शित है।
(हरिसिंह गौर संग्रहालय, सागर)

Image of Harihara – Hiraṇyagarbha from **Malhar.** On the pedestal is seen Aruṇa driving Sūrya's chariot of seven horses. 9th cent. A, D. (Hari Singh Gour Museum, Sagar).
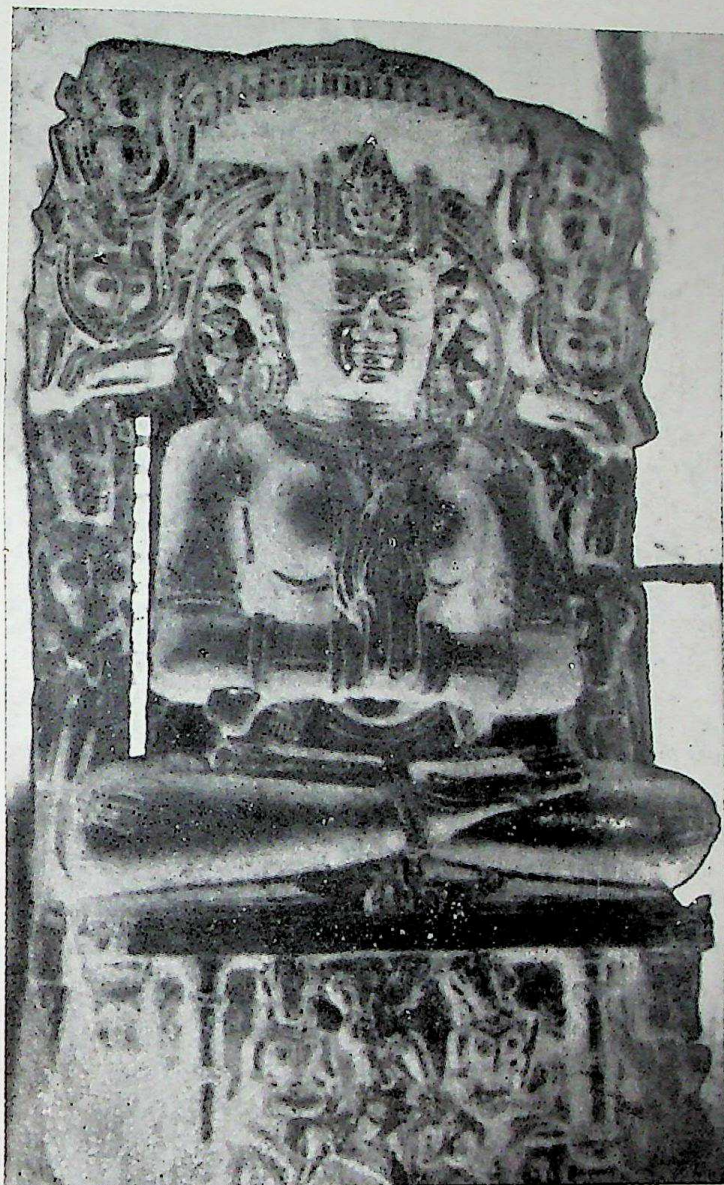
Devī (locally known as Dirindāyī), traditionally regarded as the Kuladevī of the Kalachuri rules. She is seated in Padmāsana. In her folded hands she holds lotus as offering to her lord Śiva. She is profusely bedecked and there is a round halo behind her head. On each side stands a female attendant. On the pedestal are seen female devotees. Vidyādhara couples are shown with garlands at the top corners. c. 1100 A. D.

'दिड़िनदायो' नाम से अभिहित देवी मूर्ति, जो जनश्रुति के अनुसार मल्हार के कलचुरि-शासकों की कुलदेवी थी। वे पद्मासन में बैठी हैं। उनके अंजलिबद्ध हाथों में कमल है, जिसे वे अपने आराध्य शिव को अर्पित करने हेतु लिये हैं। वे अनेक आभूषण पहने हुए हैं तथा उनके मस्तक के पीछे गोल प्रभामंडल है। उनके प्रत्येक ओर एक पार्श्वचारिका है। चरणचौकी पर तीन आराधिकायें हैं। ऊपर के कोनों में मालाधारी विद्याधर-युगल अंकित हैं। समय लगभग ११०० ई०

Plate XXIV
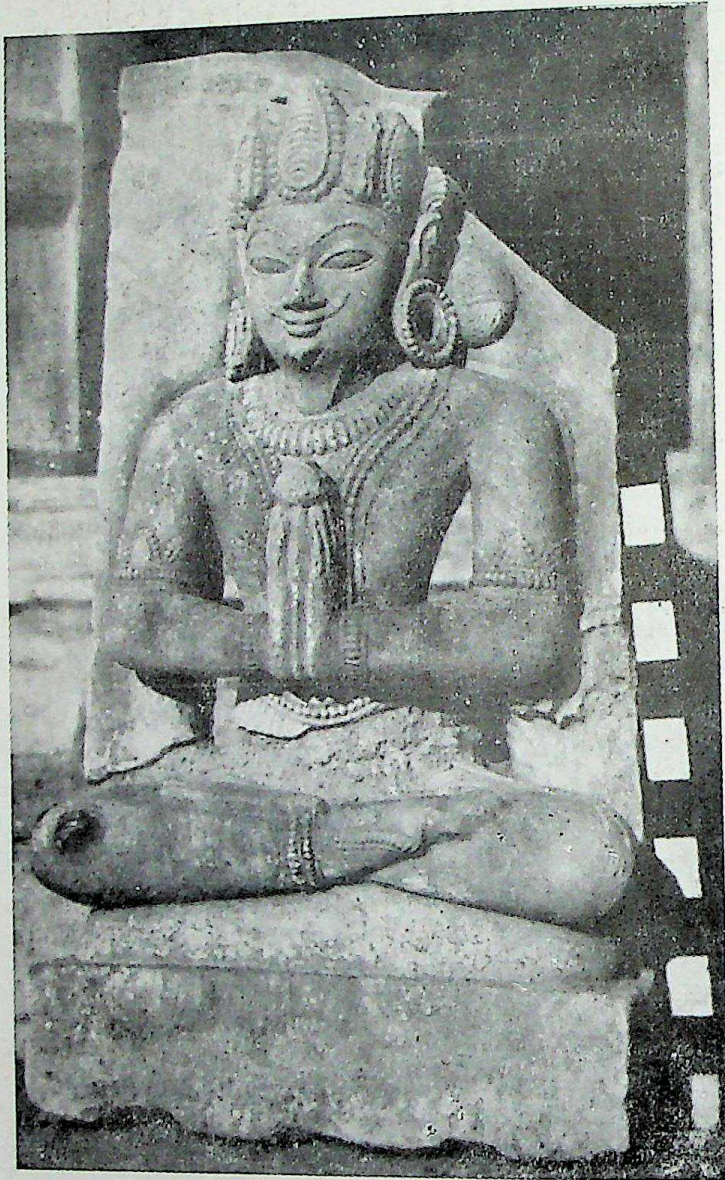
पद्मासन में स्थित अंजलिबद्ध राजपुरुष। उसको मूंछ, छोटी दाढ़ो तथा विविध आभूषण सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रदर्शित हैं। ई० ११ वीं शती।

A royal figure seated in Padmāsana in the attitude of adoration. He has moustaches and a small beard. He wears various ornaments tastefully. 11th cent. A. D.
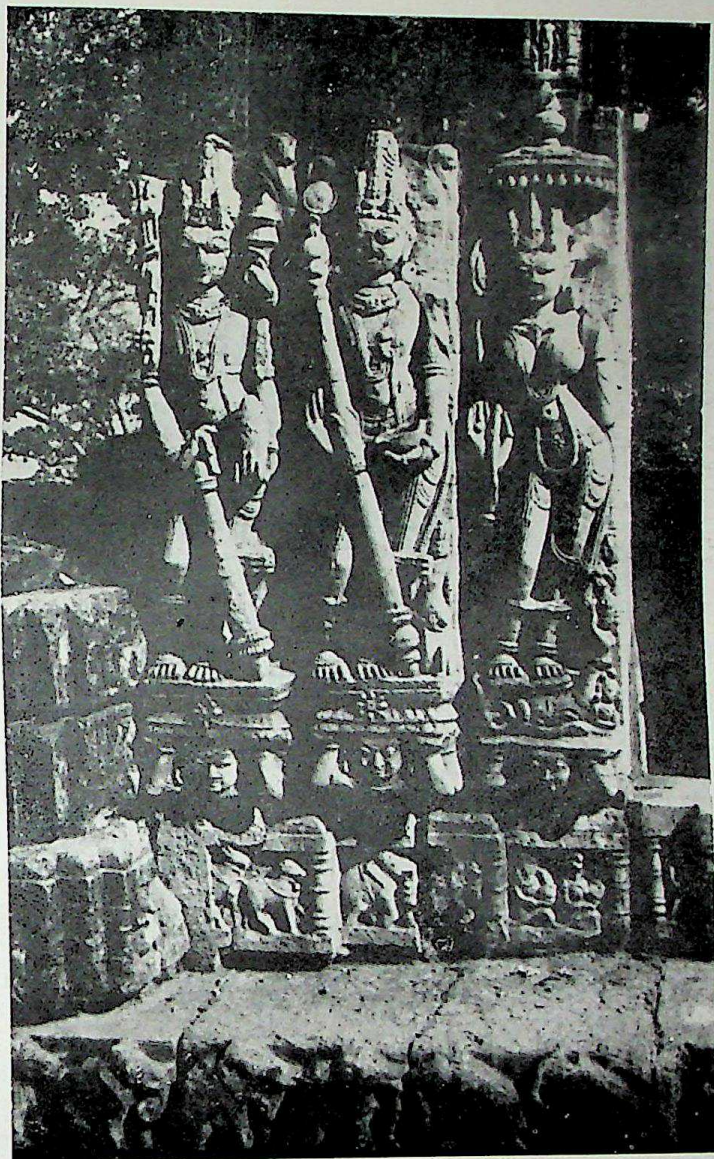
मल्हार में पातालेश्वर मंदिर का द्वार–स्तंभ। ऊपर क्रमशः विष्णु, शिव तथा यमुना की खड़ी हुई प्रतिमाएं हैं। विष्णु के हाथों में चक्र, गदा, पद्म तथा शंख (फलाकार) है। शिव के दाएं हाथ में विशाल कपालदंड है। यमुना अपने वाहन कच्छप पर खड़ी हैं। नीचे भारवाहक कीचक बने हैं। निचले भाग में गाय, बैल, हाथी तथा अश्व एवं पूजक युगल अंकित हैं; ११वीं शती।

Door jamb of the Pātāleśvara temple at Malhār. Three top figures represent Viṣṇu, Śiva and Yamunā respectively. Viṣṇu holds *cakra*, *gadā*, *padma* and *śaṅkha* (in the form of a fruit). In the right hand of Śiva is seen a big *kapāladaṇḍa*, Yamunā stands on her *vāhana* tortoise. Below the figures are seen *Kicakas*. At the bottom are carved bull, cow, horse, elephant and the worshipping couples; 11th cent. A. D.
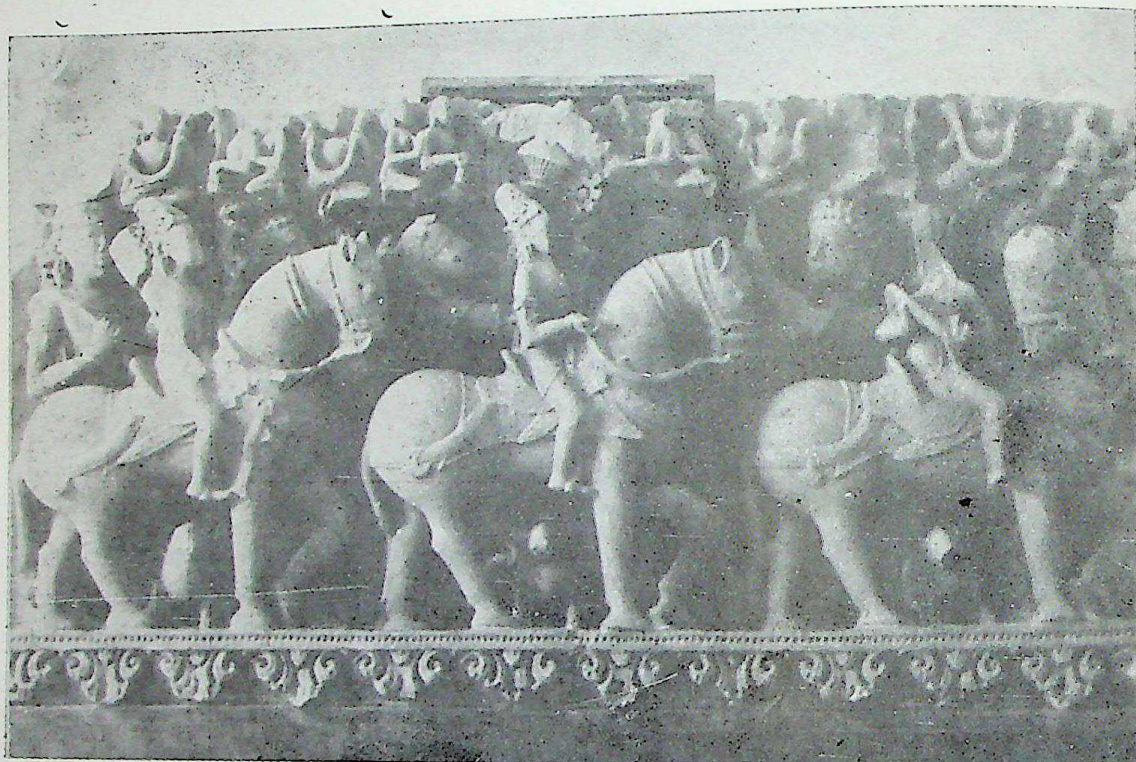
अपने परिकर सहित अश्वारूढ़ रेवंत। वे बाएं हाथ में सूर्य का प्रतीक चक्रध्वज धारण किए हैं। ऊपर मालादि लिये हुए विद्याधर-युगल हैं; ई० ११वीं शती।

Revanta with his retinue. Above, Vidyādhara couples are shown holding garlands, etc. Revanta holds *cakradhvaja* (symbol of Sūrya) in his left hand; 11th cent. A.D.
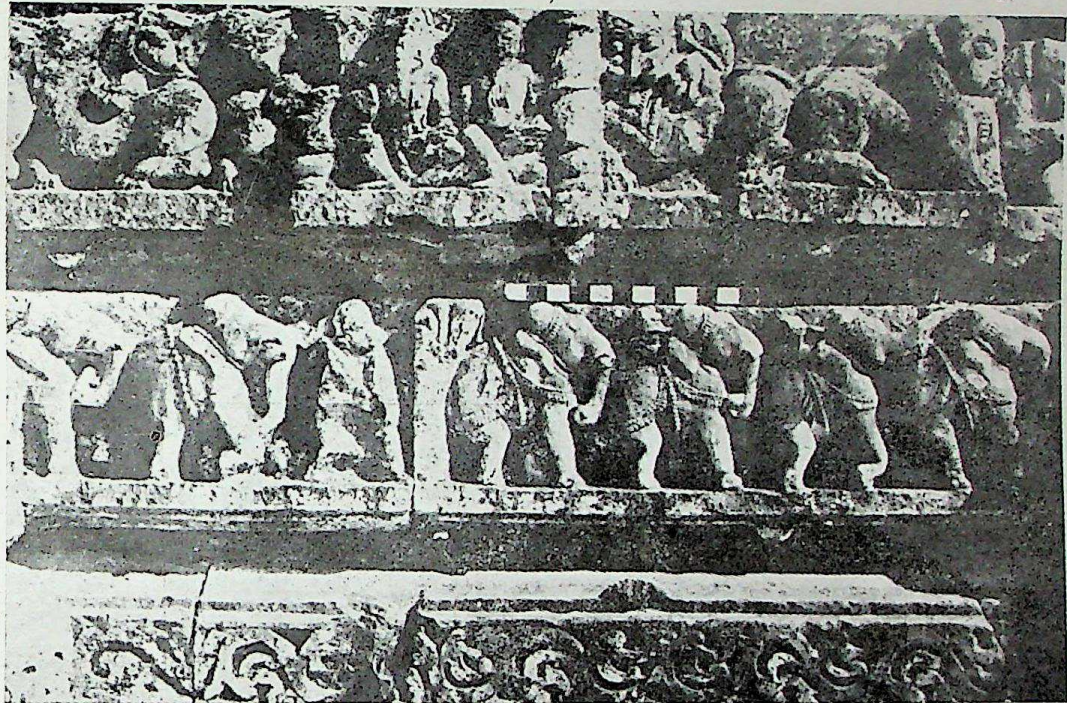
मंदिर की बाहरी दीवाल का शिलापट्ट। मध्य की सज्जापट्टी पर दौड़ते हुए हाथियों का चित्रण है। ऊपर की सज्जापट्टी पर शैव साधु तथा सपक्ष सिंह अंकित हैं; १२वीं शती।

Architectural piece forming part of an outer temple wall. The central frieze shows march of running elephants, The top one is carved with Śaiva ascetics and winged lion-figures; 12th cent.
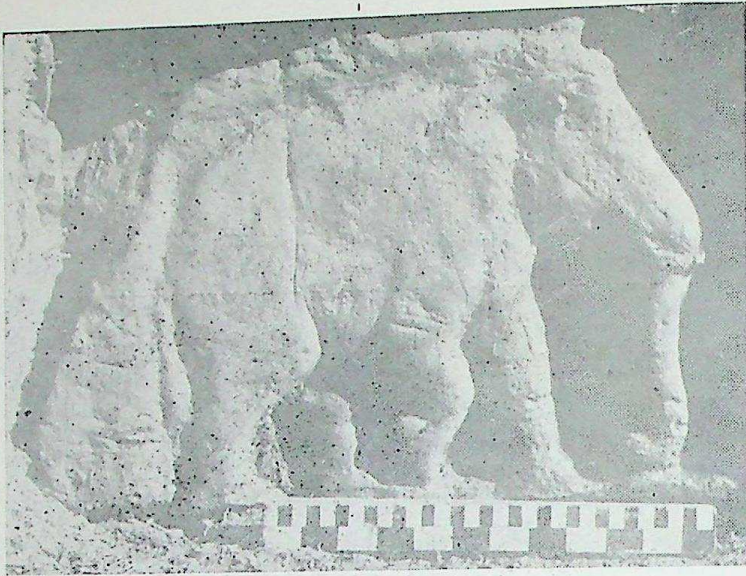
(a)
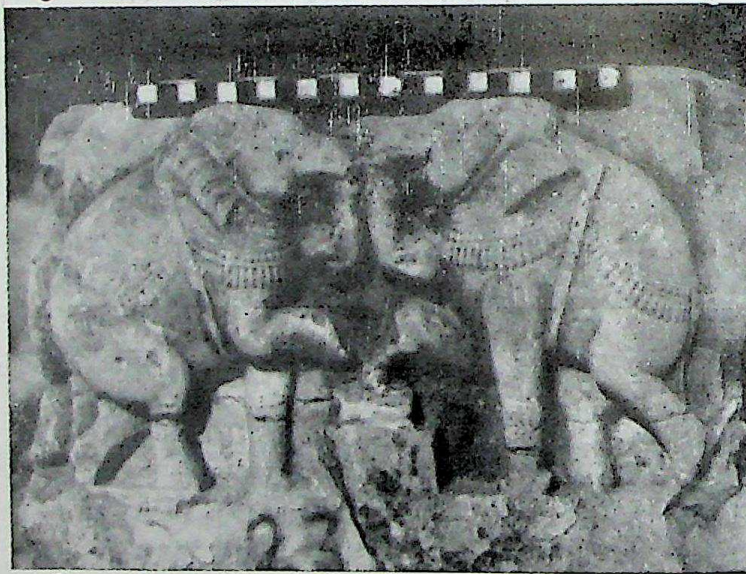
(b)

(क) दाईं ओर को चलता हुआ हाथी; ११ वीं शती।

(ख) शिलापट्ट जिस पर हस्तियुद्ध का रोचक चित्रण है; ११ वीं शती।

(a) Elephant walking to right; 11th cent.

(b) Stele carved with a scene of elephant-fight; 11th cent.
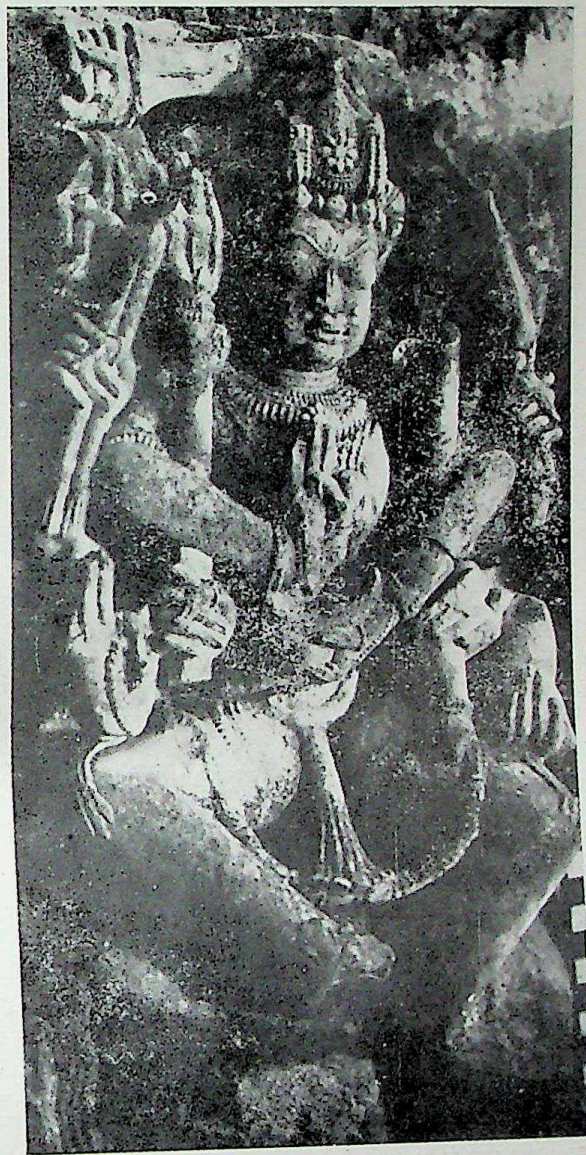
(a)

(क) दसभुजी रौद्ररूपी नटराज, जिनके हाथों में त्रिशूल, बाण, माला, कपाल आदि हैं। मस्तक पर विविध रत्नों तथा मुंडमाल से अलंकृत जटाजूट है; १२ वीं शती।

(a) Ten-handed Naṭarāja in a fierce posture holding triśula, arrows, rosary, *kapāla* etc. He wears an elaborates crown decorated with jewels and *muṇḍamāiaı* 12th cent.

बाएं हाथ में सनाल कमल लिए हुए तथा दायाँ हाथ वरदमुद्रा में प्रदर्शित करते हुए बौद्ध देव पद्मपाणि अवलोकितेश्वर ।

Buddhist deity Avalokiteśvara holding a stalked lotus in his left hand.

(b)

(ख) अलंकृत स्तंभ का टकड़ा, जिस पर कीर्ति-मुखों सहित सुन्दर पत्र-रचना है। मध्य में आराधना में स्थित शैव साधकों की श्रेणी है; ११वीं शती।

(b) Part of an ornamental pillar showing beautiful scroll work interspersed with *kīrtimukhas.* The central panel depicts a row of seated Śaiva ascetics in adoration; 11th cent. A. D.